ISSN No. 2582-9548

nbt.india

एकः सूते सकलम्

साहित्य और संस्कृति की द्विमासिकी

पुस्तक संस्कृति

वर्ष - 8 ◆ अंक - 1 ◆ जनवरी - फरवरी 2023 ◆ मूल्य ₹40.00

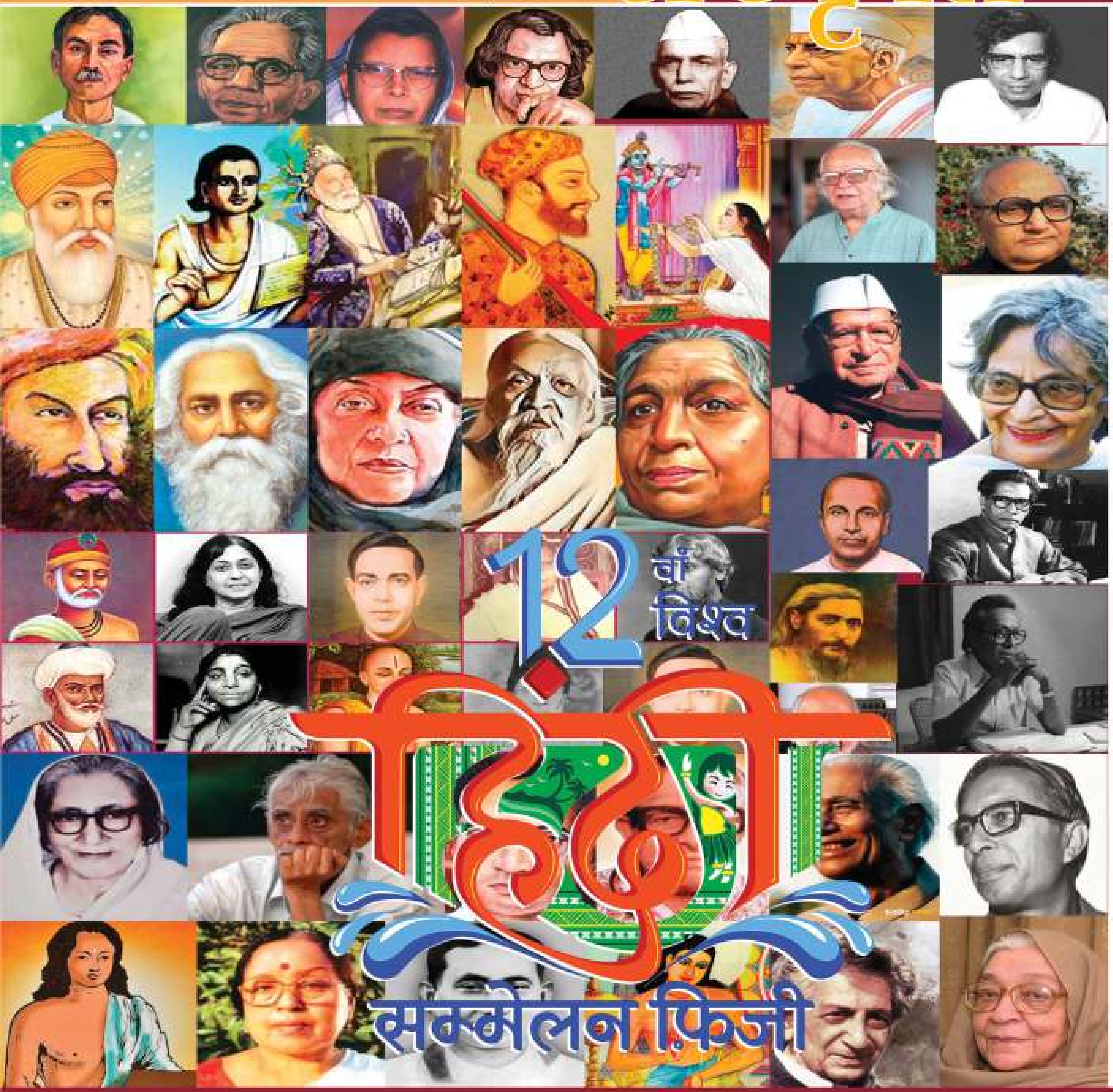

- हिंदी साहित्य की राष्ट्रीय परंपरा
- वैश्विक स्तर पर हिंदी का बढ़ता वर्चस्व
- दक्षिण भारत में हिंदी की स्थिति
- विश्व में हिंदी की वैधानिक उपस्थिति
- विदेशी हिंदी विद्वानों का योगदान
- हिंदी और विज्ञान

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के कुछ नए प्रकाशन

कवियों का विज्ञान संसार

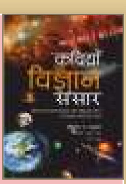

संकलन व अनुवाद :

सावन कुमार बाग, मेहेरे वान

प्रस्तुत पुस्तक में बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय के नौ निबंध और रवींद्रनाथ टैगोर के पाँच निबंधों के साथ सत्येंद्र नाथ बोस को संबोधित पत्र भी संगृहीत हैं। बंकिम चंद्र ने निबंधों में सौर महा-विस्फोट, आकाश में कितने तारे हैं, धूल का रहस्य, हवाई यात्रा की कहानी, मनुष्य की प्राचीनता तथा टैगोर ने अपने निबंधों में परमाणु-लोक, नक्षत्र-लोक, सौर जगत, गृह-लोक और भू-लोक के बारे में चर्चा की है।

पृ. 150; रु. 205.00

भारत में आधुनिक विज्ञान के संस्थापक

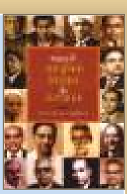

सी.एन.आर. राव, इंदुमती राव

इस पुस्तक में 16 उत्कृष्ट वैज्ञानिकों के जीवनवृत्त, उनके अनुसंधान और अन्य उपलब्धियों की जानकारी दी गई है। इन वैज्ञानिकों ने जैविकी, भौतिकी, रासायनिक, वानस्पतिक, आण्विक, अंतरिक्ष, सांख्यिकी, खगोल और चिकित्सा जगत में नए आयाम स्थापित किए हैं।

पृ. 132; रु. 195.00

बुलेट ट्रेन

आर.के. रौशन

अनुवाद : **दीपाली ब्राह्मी**

यह पुस्तक बुलेट ट्रेन के इतिहास और पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालती है। यह भारत पर विशेष बल देते हुए संपूर्ण विश्व के विभिन्न भागों में बुलेट ट्रेनों के वर्तमान स्तर तथा भविष्य की संभावनाओं का परीक्षण है। साथ ही, इसकी तकनीक की भी व्याख्या की गई है। इसके लाभ एवं आलोचनाओं को बहुत निष्पक्ष रूप से दर्शाया गया है।

पृ. 136; रु. 200.00

मानस से देवते : श्री गुरु नानक देव जी की वाणी और दर्शन

कर्मजीत सिंह,
इकबाल सिंह लालपुरा

प्रस्तुत पुस्तक गुरु नानक देव जी महाराज के दर्शन का परिचय है। इस पुस्तक में अकाल पुरख प्रभु का स्वरूप और उससे मिलने की विधि का, कुदरत द्वारा भगवान की आरती, जीवन का सत्य, विद्या के रूप, महिलाओं के सम्मान, पूर्ण संत की परिभाषा, निरोग रहने की विधि, उत्तम राज्य की संकल्पना, जीवन बदलने के उपाय आदि पर विचार किया गया है।

पृ. 292; रु. 505.00

पंचामृत

(बाल कहानियाँ)

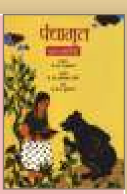

संकलन : **बी.एस. रुक्कम्मा**

अनुवाद : **टी.जी. प्रभाशंकर 'प्रेमी'**

चित्र : **के.आर. सुब्बण्णा**

यह पुस्तक 10 कहानियों का संकलन है। सभी कहानियाँ मनोरंजक और कौतूहल से पूर्ण हैं जो बच्चों को बाँधे रखती हैं। सभी कहानियों कुछ-न-कुछ संदेश अवश्य दे जाती हैं। भाषा सहज और सरल है।

पृ. 64; रु. 75.00

जादुई मांडू

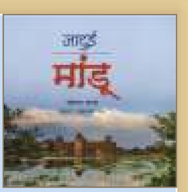

स्वप्ना दत्ता

अनुवाद : **कुसुमलता सिंह**

प्रस्तुत पुस्तक मांडू, किलों का शहर, मध्य प्रदेश के बारे में बताती है जो मूल रूप से परमार राजाओं के द्वारा बनाया गया था और बाद में मुगलों के अधीन हो गया। यहाँ कई स्मारक हैं और सबके साथ किंवदंतियाँ जुड़ी हुई हैं। किसने महल बनवाने के लिए धन दिया और कैसे नर्मदा नदी को रानी रूपमती के लिए वहाँ लाया गया, जैसे अनेक प्रसंगों का विवरण इस पुस्तक में दिया गया है।

पृ. 76; रु. 210.00

एक था दाना अनजाना

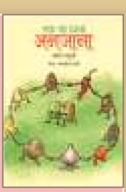

समीर गांगुली

चित्र : **इस्माईल लहरी**

नौ से 12 वर्ष के बच्चों के लिए यह पुस्तक वास्तव में हम सभी के लिए एक बड़ा संदेश है। कहानी के माध्यम से लेखक ने छोटे-बड़े, ऊँच-नीच के बीच की खाई को पाटने का कार्य किया है। आसान और सहज शब्दों में कहानी को पिरोया गया है।

पृ. 28; रु. 75.00

अचंभा अष्टभुजा

विकी आर्य

अनुवाद : **पंकज चतुर्वेदी**

छह से आठ वर्ष के बच्चों के लिए यह पुस्तक कहानी के माध्यम से समुद्री जंतु ऑक्टोपस के बारे में बताती है कि कैसे वह अपने आपको परिवेश के अनुकूल ढालने में सक्षम है। कहानी के साथ-साथ अन्य समुद्री जंतुओं से भी रू-ब-रू कराया गया है।

पृ. 24; रु. 70.00

मुर्गा और मुर्गी की व्यथा

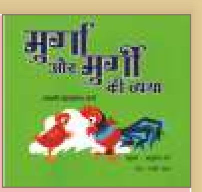

लक्ष्मी नारायण गर्ग

अनुवाद : **आशुतोष गर्ग**

चित्र : **विकी आर्य**

यह बाल उपन्यास है जिसमें मुर्गा और मुर्गी के बातचीत से वर्तमान परिप्रेक्ष्य में मनुष्य के बदलते व्यवहार को उजागर किया गया है। 10 से 12 वर्ष के बच्चों के लिए यह पुस्तक बताती है कि सुबह अपनी बाँग देकर सबको जगाने वाला अपनी दयनीय दशा को मुर्गी से कैसे साझा करता है।

पृ. 20; रु. 70.00

प्रधान संपादक
प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा

संपादक
पंकज चतुर्वेदी

सहायक संपादक
दीपक कुमार गुप्ता

संपादकीय सहयोग
विजय कुमार, डॉ. सुधीर पाण्डेय

विज्ञापन एवं प्रसार
कंचन वांचु शर्मा

उत्पादन
अनुज कुमार भारती, पवन दुबे

रेखाचित्र
मनीष वर्मा

सज्जा/डिजाइन
ऋतुराज शर्मा, समरेश चटर्जी

शब्द संयोजन/कार्यालयीन सहयोग
प्रवीन कुमार

सदस्यता शुल्क
व्यक्तियों के लिए
एक प्रति : ₹ 40.00
वार्षिक : ₹ 225.00
(शुल्क भारत के लिए मान्य)

संपादकीय पत्र-व्यवहार
संपादक
पुस्तक संस्कृति
राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत
पता : नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया
फेज़-II, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070.
फोन : 011-26707876
ई-मेल: editorpustaksanskriti@gmail.com

प्रकाशक व मुद्रक अनुज कुमार भारती द्वारा
नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया (राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत)
नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज़-II, वसंत कुंज,
नई दिल्ली-110070 के लिए प्रकाशित और
रेक्मो प्रेस प्रा. लि., सी-59, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया
फेज़-I, नई दिल्ली-110020 से मुद्रित।

संपादक
पंकज चतुर्वेदी

सर्वाधिकार सुरक्षित : प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक और प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। प्रकाशित रचनाओं के विचार से प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं है। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत से संबंधित सभी विवादास्पद मामले केवल दिल्ली न्यायालय के अधीन होंगे।

ISSN NO. 2582–9548

पुस्तक संस्कृति

साहित्य एवं संस्कृति की द्विमासिकी
वर्ष-8; अंक-1; जनवरी-फरवरी, 2023

>> विश्व हिंदी सम्मेलन <<

इस अंक में

संपादकीय — *प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा* — 2
विरासत — **हिंदी साहित्य की राष्ट्रीय परंपरा**—*डॉ. रामविलास शर्मा* — 4
आलेख — **दक्षिण भारत में हिंदी का पठन-पाठन**—*संतोष अलेक्स* — 6
लेख — **वैश्विक स्तर पर हिंदी का बढ़ता वर्चस्व**—*योगेश कुमार गोयल* — 8
लेख — **दक्षिण भारत में हिंदी की स्थिति** —*डॉ. सुरेश कुमार मिश्रा 'उरतृप्त'* — 11
आलेख — **वैश्वीकरण के दौर में 'हिंदी' : विस्तार एवं संभावनाएँ** —*डॉ. मनोज कुमार* — 14
आलेख — **अनूदित लोक कथाओं का संसार : तिलिस्म और चुनौतियाँ** —*प्रीता व्यास* — 16
लेख — **विश्व में हिंदी की वैधानिक उपस्थिति**—*दीप्ति अग्रवाल* — 19
आलेख — **विदेशी हिंदी विद्वानों का योगदान**—*डॉ. जवाहर कर्नावट* — 21
लेख — **इंटर आर्ट्स, जिला केंद्रीय पुस्तकालय और 'आवारा मसीहा'** —*डॉ. मुन्ना कुमार पांडेय* — 23
आलेख — **हिंदी में चिकित्सा, पढ़ाई और प्रायोगिकता**—*पूनम खनगवाल* — 26
लेख — **हिंदी और विज्ञान**—*डॉ. शुभ्रता मिश्रा* — 28
लेख — **मालवा-निमाड़ का आनुष्ठानिक पर्व : संजा** —*हेमलता शर्मा 'भोली बेन'* — 30
शब्द ज्ञान — **आओ भारतीय भाषाएँ सीखें** — 32
लेख — **विदेश में हिंदी**—*डॉ. मृदुल कीर्ति* — 34
लेख — **विज्ञान का प्रथम शोध-प्रबंध हिंदी में**—*डॉ. अशोक शर्मा* — 36
लेख — **एक लीजिए-एक दीजिए : अमेरिका के लघु पुस्तकालय** —*शशि पाधा* — 38
आलेख — **क्रांतिकारी रानी खैरागढ़ी**—*डॉ. कमल के. 'प्यासा'* — 40
लेख — **बाल स्वातंत्र्य सेनानी राजा जोरावर**—*विजय शर्मा* — 43
लेख — **भारत की पहली मीटरगेज रेलवे : 150 गौरवपूर्ण वर्ष**—*विमलेश चंद्र* — 45
पुस्तक समीक्षा — 48
साहित्यिक गतिविधियाँ — 62

देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता एवं उसकी प्रयोजनशीलता

हम भाषिक के रूप में जिन ध्वनियों का उच्चारण करते हैं, वे दूसरों के कानों तक पहुँचने के बाद समाप्त हो जाती हैं। वे केवल सुनने तक सीमित रहती हैं। यदि हम चाहते हैं कि वे स्थायी रहें तथा दिखें तब उन ध्वनियों को कोई साकार रूप देना पड़ेगा, इसके लिए कुछ आकृतियाँ चाहे वे रेखाओं के रूप में हों या चित्रों के रूप में, बनानी पड़ती हैं, ऐसा करने पर भाषा लिपि का रूप प्राप्त करती है। भाषा लिपि में कब लिखी जाने लगी, इसका कोई निश्चित तिथि संबंधी ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है। यह सब विकास का परिणाम है। हाँ, विगत शताब्दियों में पुरातन की खोज का जो क्रम प्रारंभ हुआ है, उस क्रम में खुदाई के परिणामस्वरूप कुछ ताम्रपत्र, प्रस्तर खंड, मोहरें आदि मिली हैं। उन पर जो लिखा हुआ मिला है, उससे ज्ञात होता है कि लिपि का विकास काफी पूर्व घटना है।

देवनागरी लिपि का विकास

सभी विद्वान इस बात से सहमत हैं कि ब्राह्मी लिपि सबसे प्राचीन लिपि है। इसी लिपि से भारत की सभी लिपियों का विकास हुआ है। देवनागरी का भी विकास इसी से हुआ है। 'ब्राह्मी' शब्द का अर्थ 'वैदिकी' भी है। अतः 'ब्राह्मी' और 'वैदिकी' एक ही लिपि हुई। डॉ. हरदेव बाहरी ने विकास की दृष्टि से ब्राह्मी लिपि को तीन कालों में विभाजित किया है—प्रागैतिहासिक काल (वैदिक युग से छठी शती ई.पू. तक), बौद्धकाल (पाँचवीं-छठी ई.पू. से लेकर 350 ई. तक) तथा गुप्तकाल जिसके बाद ब्राह्मी आधुनिक लिपियों के रूप में विकसित हो गई (हिंदी : उद्भव, विकास और रूप पृ.सं. 253)। श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा का मत है कि वर्तमान नागरी लिपि का मूल अर्थात प्राचीन रूप अशोक के शिला लेखों की लिपि में मिलता है तब से अब तक ब्राह्मी लिपि ने देवनागरी लिपि के रूप में अपना वर्तमान आकार लेने के लिए बहुत लंबा सफर पार किया है। किसी लिपि के वैज्ञानिक होने का अर्थ क्या है?

सामान्यतः यह कहा जा सकता है कि—

1. जिस लिपि में जैसा लिखा है वैसा ही पढ़ा जाए।
2. जब लिपि में एक ध्वनि को व्यक्त करने के लिए एक चिह्न हो।
3. मानक एवं वर्ण, बोधक चिह्न इतने भिन्न हों कि किन्हीं दो चिह्नों के स्वरूप में परस्पर कोई भ्रम न हो।

इन तीन आधारों पर हम देखते हैं कि देवनागरी लिपि अन्य प्रचलित लिपियों की तुलना में अधिक वैज्ञानिक और समृद्ध है।

देवनागरी लिपि के वैज्ञानिक होने के संबंध में उसकी निम्न विशेषताएँ ध्यान देने योग्य हैं—

देवनागरी के ध्वनि चिह्न इस प्रकार वर्गीकृत हैं कि एक स्थान विशेष से उच्चारित होने वाले अक्षर एक ही वर्ग में सम्मिलित हैं। उदाहरण के लिए,

कंठ से उच्चारित होने वाली ध्वनियाँ
अ, आ (स्वर), क, ख, ग, घ, ड़ (व्यंजन), ह, अः (उष्म)

तालु से उच्चारित होने वाली ध्वनियाँ
इ, ई (स्वर), च, छ, ज, झ, ञ (व्यंजन), य (अंतस्थ), श (उष्म)

मूर्धा से उच्चारित होने वाली ध्वनियाँ
ऋ (स्वर), ट, ठ, ड, ढ, ण (व्यंजन), र (अंतस्थ), ष (उष्म)

दंत से उच्चारित होने वाली ध्वनियाँ
लृ (स्वर), त, थ, द, ध, न (व्यंजन), ल (अंतस्थ), स (उष्म)

ओष्ठ से उच्चारित होने वाली ध्वनियाँ
उ, ऊ (स्वर), प, फ, ब, भ, म (व्यंजन)

नासिका से उच्चारित होने वाली ध्वनियाँ
ङ, ञ, ण, न्, म् (व्यंजन)

कंठतालु से उच्चारित होने वाली ध्वनियाँ
ए, ऐ (स्वर)

कंठोष्ट्य से उच्चारित होने वाली ध्वनियाँ
ओ, औ (स्वर)

दंतोष्ट्य से उच्चारित होने वाली ध्वनियाँ
व (अंतस्थ)

अन्य किसी भी भाषा की लिपि में वर्णमाला का इस प्रकार का वैज्ञानिक वर्गीकरण नहीं मिलता।

देवनागरी के अक्षरों के नाम तथा इनके लिखित और उच्चारित रूप में भिन्नता नहीं है जैसी विशेषतः रोमन लिपि में है। उदाहरणार्थ, ई के लिए रोमन लिपि में कहीं ई (E) Begin कहीं I (This) का प्रयोग होता है।

रोमन लिपि में एक अक्षर कई ध्वनियों का सूचक है, जैसे—यू (U) अ की भी ध्वनि देता है (BUT) और उ की भी (PUT) IC से कभी स (Central) का बोध होता है, कभी C से च का बोध होता है, जैसे—(CHABRA) (Chamber) और कभी (C) से क का भी बोध होता है, जैसे—(CAT) का ध्वनि के लिए रोमन लिपि में C, K, Q तीनों अल्फाबेट (वर्णों) का प्रयोग Cat, Kite, Question होता है।

देवनागरी समृद्ध लिपि है। इसमें विश्व की भाषाओं की ऐसी कोई ध्वनि नहीं है जिसका उच्चारण न होता हो।

देवनागरी ने समय के साथ कई चिह्नों को अपना लिया है, जैसे—कॉलेज या डॉक्टर में आधे ओ (O) की ध्वनि को सूचित करने के लिए आ की मात्रा (ा) पर अर्धचंद्र (ॅ) का चिह्न लगा दिया जाता है। जेड (ज़) की ध्वनि के लिए ज के नीचे बिंदु का प्रयोग कर दिया जाता है। इसी प्रकार फारसी शब्दों के सही प्रयोग के लिए मूल

ध्वनियों के नीचे चिह्न लगाया जाता है, जैसे—क़, ख़, ग़, ज़, फ़ चिह्न लगाकर पाँच नई ध्वनियाँ शामिल कर ली गई हैं।

देवनागरी में स्वर क्रमानुसार रखे गए हैं अर्थात कंठ से श्वास सीधे स्वरों के रूप में निकलती है। इसके पश्चात व्यंजनों का क्रम आता है। रोमन लिपि में ऐसा नहीं है, कोई स्वर कहीं है और कहीं उदाहरणार्थ ए (A) सबसे पहले, ई (E) पाँचवें क्रम पर, आई (I) आठवें क्रम पर और (O) 14वें क्रम पर है।

देवनागरी में जैसा लिखा जाता है वैसा पढ़ा भी जाता और जैसा बोला जाता है, वैसा ही लिखा जाता है। उदाहरण के लिए, देवनागरी में अजमेर को अजमेर ही लिखा जाएगा, रोमन में अजमेर को AJMER लिखा जाएगा, पर अजमेर भी पढ़ सकते हैं। रोमन लिपि में NIGHT को 'नाइट' उच्चारित करेंगे और KNIGHT को भी 'नाइट' उच्चारित करेंगे।

देवनागरी लिपि में प्रत्येक वर्ण का उच्चारण होता है। रोमन लिपि में (अंग्रेजी में) ऐसा नहीं है। उदाहरण के लिए, Half में L मूक है, Knife में K मूक है, Listen में T मूक है।

देवनागरी में प्रत्येक ध्वनि के लिए अलग चिह्न और एक चिह्न की एक ध्वनि होती (रहती) है। अंग्रेजी में ऐसा नहीं है, क के लिए अंग्रेजी में C, K, Q तीनों का पृथक-पृथक प्रयोग होता है। C (CAT), K (Kapur), Q (Question)

देवनागरी लिपि लेखन में अपेक्षाकृत कम जगह लेती है, जैसे—चन्द्रिका (Chandrika), शर्मा (Sharma), धर्म (Dharma), श्रीवास्तव (Shrivastava), सर्वेश्वर (Sarveshwara)।

देवनागरी लिपि में वर्ण-लेखन के छोटे और बड़े रूप नहीं हैं। रोमन में छोटे और बड़े रूप हैं; उदाहरण—Aa, Bb, Cc, Dd आदि छोटे-बड़े रूप में कई जगह आकार भेद भी हैं; उदाहरण के लिए, Dd, Bb, Ff, Gg।

देवनागरी लिपि में ह्रस्व स्वरों में तनिक-सा परिवर्तन करके (मात्रा लगाकर) दीर्घ बनाया जा सकता है; उदाहरण—'अ, इ, उ' में मात्रा लगाकर 'आ, ई, ऊ' बनाया जा सकता है।

व्यंजनों को जोड़कर (संयुक्त रूप में) लिखने की व्यवस्था केवल देवनागरी लिपि में ही है, जैसे—द्वारा, आत्मा, निस्सार आदि। देवनागरी में मात्राएँ लगाने की दिशा सुनिश्चित है।

े ै ॅ

ि ी ौ ो

ु ू

देवनागरी लिपि अक्षरात्मक लिपि है। इसमें प्रत्येक ध्वनि के लिए पृथक-पृथक स्वतंत्र वर्ण हैं। इसमें प्रत्येक स्वर वर्ण के लिए पृथक से मात्रा-चिह्न निश्चित होते हैं। रोमन या उर्दू में भारतीय भाषाओं को लिखने के लिए ऐसी कई ध्वनियाँ हैं जिनके लिए दो लिपि चिह्नों को मिलाकर लिखना पड़ता है, जैसे—हिंदी के ख, घ, द, झ, ठ आदि सभी महाप्राण ध्वनियों को रोमन लिपि में के, जी, डी, जी, टी आदि में 'एच' मिलाकर लिखना पड़ता है, जैसे—ख के लिए Kh, घन के लिए Gh, झ के लिए Jh, ठ के लिए Th। ध्वनियों के लिए रोमन में दो चिह्न तथा देवनागरी में एक चिह्न लगता है।

रोमन लिपि के कई शब्द हैं जिनमें उच्चारण की समानता है, पर स्पेलिंग अलग-अलग है तथा अर्थ भी अलग-अलग हैं।

देवनागरी लिपि की प्रयोजनशीलता

किसी भी भाषा की लिपि केवल लिपि नहीं होती, लिपि में उस देश की संस्कृति, सभ्यता, लिपि को गढ़ने वाले मनीषियों का तप तथा शताब्दियों का ऐतिहासिक विकास-क्रम जुड़ा रहता है। आज की देवनागरी, ब्राह्मी लिपि का परिष्कृत और परिवर्धित रूप है। इस लिपि में पिछले पाँच-दस हजार वर्ष की लिपि साधना के दर्शन होते हैं। वैदिक काल से लेकर आज तक की यात्रा का यह सुफल है। यह लिपि कई भाषाओं की लिपि है—संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश फिर हिंदी। इसके साथ ही यह मराठी और नेपाली की भी लिपि है। थोड़ा बहुत कलात्मक रूप तथा कुछ गुलाई आदि के साथ गुजराती, बंगाली, असमिया, कन्नड़, मलयालम की भी लिपि इससे मिलती-जुलती हैं। भारत की लगभग सभी लिपियों में मात्राएँ समान रूप से मिलती हैं। बांग्ला, गुरुमुखी (पंजाबी लिपि) और टाकरी लिपियों की अक्षरमाला देवनागरी के काफी निकट है। देवनागरी लिपि में लिप और इतिहास की यह व्यापकता सम्मिलित है।

इसी प्रकार रोमन लिपि अपने परिष्कृत रूप में आज प्राचीन रोम और ग्रीक संस्कृति के साथ जुड़ी हैं। फारसी लिपि की भी यह कहानी है। प्रत्येक लिपि का एक इतिहास है, परंपरा है, संस्कृति है। वह स्वयं अकेली नहीं है।

देवनागरी लिपि देश की अन्य लिपियों के साथ किसी-न-किसी रूप में जुड़ी है। नए शोधों में वह तथ्य व्यक्त किया गया है कि ब्राह्मी लिपि के अक्षर तमिल लिपि से काफी मिलते-जुलते हैं। देवनागरी लिपि को भी ब्राह्मी लिपि का विकसित एवं परिष्कृत रूप माना गया है। देवनागरी लिपि में राष्ट्रभाव का जागरण हुआ है। इसमें कई भाषाओं का विशाल साहित्य सृजित हुआ है। वेद, पुराण, उपनिषद, रामायण, महाभारत पाली, प्राकृत, अपभ्रंश से लेकर वर्तमान तक का विपुल साहित्य देवनागरी लिपि में है। इस लिपि के साथ जुड़ने से यह राष्ट्रभाव विकसित होता है कि हम अपनी व्यापक विचार परंपरा और चिंतन परंपरा से जुड़े हैं। देवनागरी लिपि में संपर्क लिपि के सभी अपेक्षित गुण मौजूद हैं। देवनागरी ने उर्दू और अंग्रेजी की ध्वनियों के लिए कुल चिह्नों को स्वयं में विकसित भी किया है। यह वैज्ञानिक है, सहज है, इसका लेखन उच्चारण के अनुकूल है तथा लिपि क्रम भी वैज्ञानिकता से युक्त है।

जिन बोलियों/भाषाओं की कोई लिपि नहीं है, उन्हें कोई-न-कोई लिपि अपनानी ही पड़ेगी, पूर्वी क्षेत्र का यदि विचार करें तो गारो, खासी, जयंतिया तथा नागालैंड की आओ, कोन्याक, अंगामी आदि बोलियों की अपनी कोई लिपि नहीं है क्योंकि देवनागरी एक वैज्ञानिक और ध्वन्यात्मक लिपि है और अपने देश की लिपि है, अतः लिपि के रूप में इसे अपनाया जाना चाहिए। ऐसा होने से लिपि के साथ देश की दीर्घकालीन सांस्कृतिक और भाषाई परंपरा से हम जुड़ सकेंगे। बोडो जनजाति समुदाय ने इस दिशा में जो पहल की तथा काफी संघर्ष और प्रयासों के बाद बोडो भाषा के लिए देवनागरी लिपि को स्वीकार किया, यह प्रशंसनीय और अनुकरणीय है, हमें उनका अनुकरण करना चाहिए। देवनागरी लिपि हमारी पहचान है, इसके साथ जुड़कर हम अपनी विशाल और मूल पहचान के साथ जुड़ते हैं।

(प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा)

प्रधान संपादक, **पुस्तक संस्कृति**

हिंदी साहित्य की राष्ट्रीय परंपरा

आज से लगभग पचास साल पहले रची हुई कविताओं की भूमिका में स्व. बालमुकुंद गुप्त ने लिखा था—कविता देश की और जाति की स्वाधीनता से संबंध रखती है और कविता के लिए अपने देश के भाव और अपने मन की मौज दरकार है। हम पराधीनों में ये सब बातें कहाँ... फिर हमारी कविता क्या और उसका गुरुत्व क्या, इससे उसे तुकबंदी ही कहना ठीक है।

'गुप्त की कविता' पुस्तक की आलोचना करते हुए स्व. श्री चंद्रधर शर्मा गुलेरी ने लिखा था—विशेष बात यह है कि यह कवि भारतवर्ष का है। दिल्लगी के दालान में, श्रद्धा शोभा के शृंगार में, वास्तुति के सुमनोराज्य में वह—भारतवर्ष से भागकर आकाश में नहीं टँक जाता।

डॉ. रामविलास शर्मा

(10 अक्तूबर, 1912-30 मई, 2000)

डॉ. शर्मा आधुनिक हिंदी साहित्य के सुप्रसिद्ध आलोचक, निबंधकार, विचारक एवं कवि थे। पेशे से अंग्रेजी के प्रोफेसर, दिल से हिंदी के प्रकांड पंडित और गहरे विचारक, ऋग्वेद और मार्क्स के अध्येता, आलोचक, इतिहासवेत्ता, भाषाविद, राजनीति-विशारद थे। उन्होंने 100 से अधिक पुस्तकों का सृजन किया। वे शलाका और प्रथम व्यास सम्मान से सम्मानित थे।

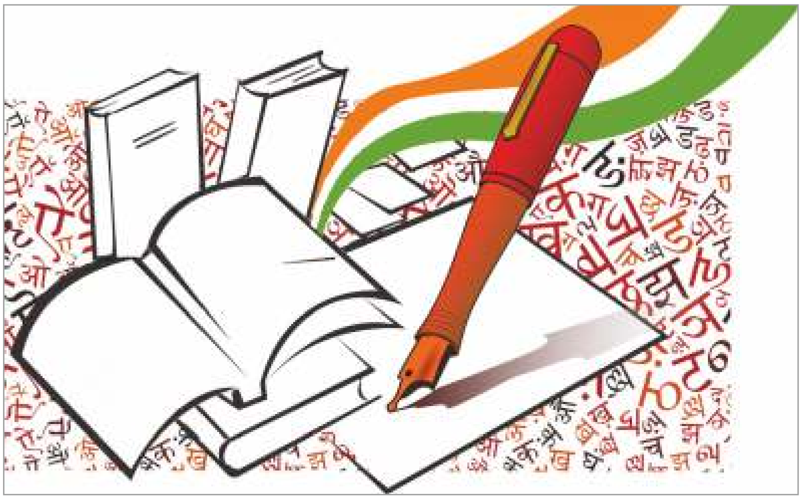

बालमुकुंद गुप्त, चंद्रधर शर्मा गुलेरी और उस समय के और बहुत से साहित्यकार कविता का संबंध देश की स्वाधीनता से जोड़ते थे। यह गुरुमंत्र उन्हें भारतेंदु हरिश्चंद्र से ही मिला था। उन्हें यह भय नहीं था कि लोग उन्हें एकांगी कहेंगे और उनका साहित्य स्थायी न होगा। आधुनिक हिंदी साहित्य में जितने भी यशस्वी कलाकार हुए हैं, किसी की रचनाएँ स्वाधीनता के प्रश्न पर तटस्थ नहीं हैं। किसी-न-किसी रूप में पराधीनता से क्षोभ और स्वाधीनता प्राप्ति की आकांक्षा से अनुप्राणित हैं। भारतेंदु, बालमुकुंद गुप्त, प्रेमचंद, निराला आदि महान साहित्यकारों में जो शौर्य, जो जिंदादिली है, आज भी ताजी दिखाई देती है, उसका यही रहस्य है।

हिंदी के प्रगतिशील कवियों ने इस स्वाधीनता प्रेमी परंपरा को अपनाया और उसे आगे बढ़ाया है। नागार्जुन, सुमन, शंकर शैलेंद्र, वीरेंद्र, शील, कमलेश, रामफेर आदि पचीसों ऐसे कवि हैं जो आज की परिस्थितियों में जनता की दशा का चित्रण करके और नए जीवन के लिए उनकी आशाएँ व्यक्त करके भारतेंदु, बालमुकुंद गुप्त, प्रेमचंद और निराला की शानदार स्वाधीनता प्रेमी परंपरा कायम किए हुए हैं और उसे बढ़ा रहे हैं।

प्रगतिशील साहित्य के विरोधी परंपरा और भारतीय संस्कृति की बात अकसर कहा करते हैं। उनके हिसाब से हिंदी साहित्य की परंपरा से स्वाधीनता-प्रेम गायब है। इनके लिए भारतेंदु, बालमुकुंद गुप्त, प्रेमचंद और निराला या तो हिंदू संस्कृति का उद्धार करने वाले थे, या सामयिक संघर्षों से दूर रहने वाले शुद्ध कला के उपासक थे। इसलिए इन प्रगति विरोधी कलाकारों की रचनाओं में ऐसे अशाश्वत विषय नहीं मिलते जैसे भारत की जनता और उसका संघर्ष, उनको अब पुनर्जन्म या फीरोजी ओठों पर बरबाद जिंदगी या लुढ़की हुई सुराही ज्यादा शाश्वत विषय मालूम होते हैं।

बालमुकुंद गुप्त ने कर्जन के अत्याचार देखकर अपना अविस्मरणीय शिव शंभू का चिट्ठा लिखा था। क्या पैना व्यंग है, क्या सीधी और बाँकी जबान है, क्या उत्कट देश-प्रेम है! लेकिन आज के प्रगति विरोधी कलाकार कर्जन के उत्तराधिकारी माउंटबेटन, ऐटली या प्राइजनहोवर पर अपना रोष नहीं प्रकट करते, उनकी कला देश में एक सुख स्वाधीन जनतंत्र कायम करने के लिए नहीं है। उनकी शब्द-शक्ति और कला हिंदी के प्रगतिशील साहित्य को कोसने में खर्च हो जाती है। वह भारतीय संस्कृति की रक्षा करने में जमीन-आसमान एक कर देते हैं। लेकिन साम्राज्यवाद ने इस संस्कृति के साथ क्या-क्या अनाचार किया है—खास कर जातीय संस्कृति को कैसे उसने हिंदू और मुस्लिम संस्कृतियों में बाँटा है, इस बारे में वे खामोश रहते हैं।

प्रेमचंद ने सारा जीवन जनता की सेवा में बिताया। हिंदुस्तान के किसानों का सुंदर चित्रण करके उन्होंने हिंदी कथा साहित्य को भारतीय कथा साहित्य का सिरमौर बना दिया। लेकिन प्रगति विरोधी साहित्यकार अपने उपन्यासों में जो गहरी अनुभूति दे रहे हैं, उसका संबंध किसानों के जीवन से नहीं है। उसका संबंध रीतिकालीन नायिका भेद के नए संस्करण से है। चोली और साड़ियों के ये कलाकार चाहे जितनी मनोवैज्ञानिक गहराइयों की बात करें, वे शिकार हैं पतित सामंती संस्कृति के, जिसमें नारी केवल भोग की वस्तु है और नायिका के सिवा और कोई भी हैसियत नहीं रखती।

निराला ने 'राम की शक्ति पूजा और तुलसीदास' में प्राचीन वीरों के नए ओजपूर्ण चित्र दिए। उसने अपने प्रारंभिक जीवन में लिखा था। मेरा अंतर व्रज कठोर है और वह व्रज की कठोरता उसने अपने काव्य प्रतीकों की भी दी थी। अलका, निरुपमा, देवी, चतुरी चमार आदि में उसने जन-साधारण के चित्र खींचकर हिंदी-कथा-साहित्य के यथार्थवाद को और सशक्त किया था। आज भी वह करुण द्रवित वाणी में पुकार उठता है—

माँ! अपने आलोक निखारो,
नर को नर्क त्रास से वारो!

रामराज्य के प्रचारकों की दादुर धुनि पर निराला का यह मेघमंद्र स्वर युग को एक चुनौती की तरह सुनाई देता है—

नर को नरक त्रास से वारो!

निराला के आज, निराला की करुणा के उत्तराधिकारी ये प्रगति विरोधी नहीं है। उनके लिए केवल एक वस्तु ओजपूर्ण है—मृत्यु! उसके भय से वे निरंतर त्रस्त रहते हैं—

अपने लिए, अपनी अर्द्धसामंती व्यवस्था के लिए, अपनी शाश्वत रचनाओं के लिए। उनकी करुणा का एक विषय है—वे स्वयं। अर्थात वे स्वयं दयनीय हैं, कभी प्रेयसी से शिकायत करते हैं, कभी किसी जनतंत्र से अमेरिकी रक्षक से!

प्रगति विरोधी इस बात की बड़ी शिकायत करते हैं कि प्रगतिशील लेखकों में दलगत भावना है, लेकिन कौन नहीं जानता कि जिस जमाने में कांग्रेस ब्रिटिश साम्राज्यवाद का विरोध कर रही थी, हिंदी के नेक लेखक उनके साथ थे। आज उस दल ने साम्राज्य विरोधी परंपरा छोड़कर दूसरा रास्ता अपनाया है। इसमें कसूर प्रगतिशील लेखकों का नहीं है। कांग्रेस अगर जनता की संस्था न रहकर अब पदाधिकारियों की संस्था बन गई है, तो इसमें दोष किसका है... प्रगतिशील साहित्य के विरोधी जनता से इस बात को छिपाते हैं कि वे स्वयं ऐसे दलों के साथ हैं जिन पर से जनता की आस्था मिट चुकी है। वे इसका गुस्सा उतारते हैं प्रगतिशील लेखकों पर, लेकिन यह समय ऐसा है कि हिंदुस्तान के स्वाधीनता आंदोलन की बागडोर पूँजीपति वर्ग और कांग्रेसी नेतृत्व के हाथ से छूट गई है। उसी के अनुरूप साहित्य क्षेत्र में प्रतिक्रियावादियों की साख उठती जा रही है। नित्य प्रति प्रगतिशील साहित्य को कोसने का यही कारण है। उन्हें भविष्य से डर लग रहा है।

प्रगतिविरोधियों को प्रगतिशील साहित्य में हिंसा की गंध आती है। आए दिन जो गोली कांड हुआ करते हैं, उनमें उन्हें हत्या और रक्तपात कुछ नहीं दिखाई देता। वियतनाम, मलाया और कोरिया में जो साम्राज्यवादियों द्वारा रक्तपात हो रहा है, उसमें भी उन्हें हिंसा नहीं दिखाई देती। पंजाब में जब अंग्रेजों ने जनता पर गोलियाँ चलाई थीं, तब डायर ने बोल्शेविक रूस को जिम्मेदार ठहराया था कि वह हिंदुस्तानियों को भड़काता है। अगस्त-1919 की मर्यादा ने डाबर को मुँहतोड़ जवाब दिया था और कहा था कि रूस के लोग बोल्शेविक रूस का हौवा दिखाने से अपनी आजादी के लिए लड़ना छोड़ने वाले नहीं हैं। हिंदी के प्रगतिविरोधी लेखक मर्यादा की परंपरा का पालन न करके डायर के बताए हुए रास्ते पर चलना ज्यादा पसंद करते हैं। प्रगतिशील लेखकों को रूस से प्रेरणा मिलती है, ये हिंसा के उपासक हैं—इस तरह के प्रचार से उन्हीं लोगों का हित होता है जो भारत को लूटकर यहाँ की जनता को अशिक्षा और अकाल के हवाले किए हुए हैं।

जैसे-जैसे प्रगतिशील साहित्य जनता से और घनिष्ठ संपर्क कायम करता हुआ सशक्त होता जाता है, वैसे-वैसे उसके विरोधियों का अराष्ट्रीय रूप निखर आता है। वे हिंदी साहित्य की स्वाधीनता प्रेमी परंपरा को छोड़ रहे हैं, उसके जनवादी तत्वों से मुँह मोड़ रहे हैं और रूप की मरीचिका की तरह जितनी तेजी से दौड़ते हैं, कला की सुंदरता उनसे उतनी ही दूर होती जाती है। जनता के अलावा कला का दूसरा स्रोत नहीं है। प्रगतिशील लेखक इस जनता की सेवा को अपना ध्येय बनाकर हिंदी साहित्य की गौरवशाली स्वाधीनता प्रेमी परंपरा को आगे बढ़ा रहे हैं।

(श्री मध्यभारत हिंदी साहित्य समिति, इंदौर द्वारा प्रकाशित मासिक पत्रिका 'वीणा' के अक्तूबर-2017 अंक से साभार)

दक्षिण भारत में हिंदी का पठन-पाठन

दक्षिण भारत में हिंदी का पठन-पाठन उतना आसान नहीं था जितना आज दिखता है। आज की स्थिति में पहुँचने के लिए कई भाषा प्रेमी एवं संस्थाओं ने अपना विशिष्ट योगदान दिया। दक्षिण भारत में हिंदी की ज्योति जलाने वालों में सबसे उल्लेखनीय नाम महात्मा गांधी का है। गांधीजी के प्रेरणा से हिंदी के प्रचारकों का दल बना। इस दल के प्रचारकों में मोटूरी सत्यनारायण, भालचंद्र आप्टे, पट्टाभि सीतारमैया, एस. शास्त्री आदि थे। इन लोगों ने दक्षिण में हिंदी का प्रचार-प्रसार किया।

महात्मा गांधी ने सन् 1918 में इंदौर में हुए हिंदी साहित्य सम्मेलन में हिंदी प्रचार-प्रसार की नींव रखी। आज दक्षिण भारत में हिंदी प्रचार सभा के 22 परास्नातक केंद्र, 33 शिक्षा प्रशिक्षण संस्थान, पाँच सीबीएसई स्कूल और कई प्रांतीय सभाएँ कार्यरत हैं। देश आजाद हुआ और कालांतर में दक्षिण के राज्यों में कई कॉलेज व विश्वविद्यालय बने और वहाँ हिंदी विभाग खोले गए और हिंदी का पठन-पाठन होने लगा।

संतोष अलेक्स

लेखन : द्विभाषी कवि, अनुवाद विद्वान, आलोचक एवं संपादक।

संप्रति : कोचीन में मात्स्यिकी विभाग में हिंदी अधिकारी के पद पर कार्यरत।

प्रकाशन : अंग्रेजी, हिंदी एवं मलयालम में 55 किताबें प्रकाशित। हिंदी कविताओं का देश-विदेश के 32 भाषाओं में अनुवाद। 'अनुवाद : प्रक्रिया एवं व्यावहारिकता' पुस्तक भारत के तीन विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में शामिल। 30 वर्षों से अनुवाद व लेखन।

सम्मान : सात राष्ट्रीय एवं एक अंतरराष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित।

संपर्क : मोबाइल– 8281588229

ईमेल– drsantoshalex@gmail.com

केरल में हिंदी

केरल का प्रथम हिंदी रचनाकार महाराजा स्वाति तिरुनाल वर्मा को माना जाता है जिनका जन्म तिरुवितांकूर के राजा मार्तंड वर्मा के राजवंश में सन् 1813 में हुआ। उनकी रचनाएँ मध्यकालीन हिंदी कवियों की तरह भक्तिप्रधान गीत थे। उन्होंने हिंदी में कई गीत लिखे, लेकिन केरल में हिंदी के प्रचार-प्रसार का श्रेय स्व. एम.के. दामोदरन उण्णी को जाता है। सन् 1929 में प्रथम अखिल केरल हिंदी प्रचार सम्मेलन महाराजास कॉलेज एरणाकुलम में संपन्न हुआ।

सन् 1934 के आस-पास बी.कॉम. में हिंदी अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाई जाती थी। केरल में शुरू से ही हिंदी के लिए अनुकूल वातावरण रहा। केरल के स्कूलों में हिंदी दसवीं तक एक विषय के रूप में पढ़ाई जाती है। यहाँ इंटरमीडिएट एवं स्नातक स्तर पर दूसरी भाषा के रूप में हिंदी को चुनने की सुविधा है। यही नहीं, यहाँ विश्वविद्यालयों के अधीन कई कॉलेज हैं जहाँ स्नातक एवं स्नातकोत्तर स्तर पर हिंदी का अध्ययन होता है।

केरल में हिंदी भाषा के प्रयोग एवं अध्ययन पर कई पुस्तकें लिखी गई हैं, जिनमें डॉ. एन.ई. विश्वनाथ अय्यर का 'केरल में हिंदी भाषा और साहित्य का इतिहास' महत्वपूर्ण है। केरल में हिंदी प्रचार में लगे संस्थानों में केरल हिंदी साहित्य मंडल, कोचीन; हिंदी साहित्य अकादमी, त्रिवेंद्रम एवं विकल्प, त्रिशूर आदि संस्थाएँ अपनी भूमिका निभा रही हैं। केरल से कई हिंदी पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ जिनका हिंदी साहित्य के प्रसार और पठन-पाठन में महत्वपूर्ण योगदान है। इनमें राष्ट्रवाणी, युगप्रभात, केरल ज्योति, साहित्य मंडल पत्रिका, संग्रथन एवं अनुशीलन शामिल हैं। केरल में केरल विश्वविद्यालय, कालिकट विश्वविद्यालय, कोचीन विश्वविद्यालय, केंद्रीय विश्वविद्यालय कासरगोड आदि में हिंदी का अध्ययन स्नातक एवं स्नातकोत्तर स्तर पर होता है।

आंध्र प्रदेश में हिंदी (तेलंगाना एवं आंध्र प्रदेश में)

आंध्र प्रदेश में हिंदी का अच्छा वातावरण है, लेकिन यह अनायास ही नहीं हुआ। इस संबंध में तेलुगू के प्रख्यात कवि डॉ. सी. नारायण रेड्डी कहते हैं, "आंध्र प्रदेश में हिंदी के लिए कभी प्रतिकूल वातावरण नहीं रहा। महात्मा गांधी के द्वारा हिंदी की प्रचार सभा की स्थापना के कई वर्ष पूर्व ही आंध्र प्रदेश में हिंदी में नाटक लिखे गए और कुछ वर्षों तक मंचन भी हुआ।"

आंध्र प्रदेश में हिंदी लेखन की परंपरा एवं विकास के संबंध में डॉ. भीमसेन निर्मल

लिखते हैं कि "दक्षिण भारत में हिंदी को समृद्ध एवं उन्नत बनाने के लिए मध्ययुग से ही आंध्र प्रदेश के रचनाकार हिंदी भाषा में साहित्य सृजन का काम करने लगे थे। मध्ययुगीन इतिहास के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि हिंदी लेखन की परंपरा आंध्र प्रदेश के लिए नई नहीं है। इस दिशा में हिंदी के राष्ट्रीय रूप, खड़ी बोली के मूल स्रोत 'दक्खिनी' का उल्लेख किया जा सकता है। दक्खिनी का संबंध पुराने हैदराबाद राज्य—तेलंगाना और कर्नाटक प्रांतों से अधिक रहा है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि दक्षिण में हिंदी लेखन की परंपरा का इतिहास बहुत पुराना है। दक्षिण भारत के हिंदी के विकास और लेखन परंपरा को आगे बढ़ाने में अनेक साहित्यकारों ने अपना योगदान दिया है।"

आंध्र प्रदेश में सन् 1986 तक छठी से 10वीं तक हिंदी अनिवार्य रूप से पढ़ाई जाने लगी। उच्च माध्यमिक कक्षाओं में प्रथम तथा द्वितीय भाषाओं के रूप में हिंदी पढ़ाई जाती है। इंटरमीडिएट और स्नातक स्तर पर हिंदी द्वितीय भाषा के रूप में पढ़ाई जाती है। हैदराबाद, विजयवाड़ा, विशाखापट्नम, तिरूपति आदि के प्राइवेट कॉलेजों में हिंदी प्रथम भाषा के रूप में पढ़ाई जाती है। जूनियर कॉलेजों में स्नातक स्तर पर हिंदी द्वितीय भाषा के रूप में पढ़ाई जाती है। आंध्र प्रदेश से निकलने वाली पत्र-पत्रिकाएँ जैसे—कल्पना, संकल्य, पूर्ण कुंभ, भारतवाणी, श्रवंती, स्वतंत्र हिंदी वार्ता, हिंदी मिलाप, दक्षिण भारत आदि भी हिंदी भाषा के विकास के लिए महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं। आंध्र प्रदेश में उस्मानिया विश्वविद्यालय, आंध्र विश्वविद्यालय, वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय और कृष्णदेव विश्वविद्यालय में हिंदी का अध्ययन स्नातक एवं स्नातकोत्तर स्तर पर होता है।

तमिलनाडु में हिंदी

तमिलनाडु में शुरुआती दौर में हिंदी का विरोध नहीं था, जिस प्रकार से मौजूदा स्थिति में दिखाई दे रहा है। स्वाधीनता आंदोलन के दिनों में भावात्मक एकता स्थापित करने में हिंदी को सशक्त माध्यम मानकर इसके प्रचार के लिए कई प्रयास किए गए। तमिल के सुविख्यात राष्ट्रकवि सुब्रह्मण्य भारती ने अपने संपादन में प्रकाशित तमिल पत्रिका 'इंडिया' के माध्यम से 1906 में ही जनता से हिंदी सीखने की अपील की थी एवं अपनी पत्रिका में हिंदी में सामग्री प्रकाशित करने हेतु कुछ पृष्ठ सुरक्षित रखने की घोषणा की थी।

तमिलनाडु राज्य की स्थापना सन् 1968 में हुई। सन् 1927 में सरकार ने विद्यालयीन पाठ्यक्रम में हिंदी को स्थान दिया था, तब केवल एच्छिक विषय के रूप में हिंदी सिखाई जाती थी। 1938 में कांग्रेस के शासनकाल में सी. राजगोपालाचारी मुख्यमंत्री बने और उन्होंने पहले, दूसरे और तीसरे फर्मों में हिंदी को अनिवार्य कर दिया। बाद में उन्होंने सरकारी आदेश जारी कर दिया जिससे 125 सेकेंड्री स्कूलों में हिंदी अनिवार्य रूप में पढ़ाई जाने लगी। 1939 में उन्हें स्तीफा देना पड़ा और मद्रास प्रेसिडेंसी राज्यपाल के शासन के अधीन हो गई। पेरयार और अन्य विरोधियों ने हिंदी शिक्षण को हटाने की माँग की। 21 फरवरी, 1940 को गवर्नर एरिक्सन ने अनिवार्य हिंदी के बदले पाठ्यक्रम में वैकल्पिक हिंदी की घोषणा की। 1940 से 1950 तक हिंदी के प्रति विरोध का वातावरण बना रहा। 1948 में केंद्र सरकार ने सभी राज्यों में हिंदी शिक्षण को अनिवार्य करने का आदेश दिया। 1950-51 में फिर से हिंदी को वैकल्पिक बनाया गया। तमिलनाडु के स्कूलों में सातवीं कक्षा तक हिंदी पढ़ाई जाती है।

तमिलनाडु में कई कॉलेज जैसे पी.एस.जी.आर. कृष्णम्माल कॉलेज फॉर वुमन, निर्मला कॉलेज एवं पी.एस.जी. कॉलेज ऑफ आर्ट्स एंड साइंस कॉलेज, कोयंबटूर एवं कोंगू कॉलेज ऑफ आर्ट्स एंड साइंस कॉलेज, इरोड में हिंदी विभाग हैं। तमिलनाडु में अन्नामलै विश्वविद्यालय, अविनाशलिंगम विश्वविद्यालय, एस.आर.एम. मानद विश्वविद्यालय, वी.आई.टी. मानद विश्वविद्यालय आदि में हिंदी का अध्ययन स्नातक एवं स्नातकोत्तर स्तर पर होता है।

कर्नाटक में हिंदी का पठन-पाठन

दक्षिण के अन्य राज्यों की तरह शुरुआती दौर में कर्नाटक में भी हिंदी के प्रति विरोध नहीं था। स्वतंत्रता के पश्चात मैसूर राज्य में हाईस्कूलों में हिंदी का अध्ययन आवश्यक कर दिया गया था। 1940-41 के दौरान बी.ए. में हिंदी पढ़ाने की व्यवस्था की गई थी। 1946 में मैसूर और बेंगलुरू के कतिपय कॉलेजों में हिंदी सीखने का प्रबंध किया गया था। 1948-1958 के बीच मैसूर विश्वविद्यालय में इंटरमीडिएट कॉमर्स और 1950 में बी.कॉम. में हिंदी पढ़ने की व्यवस्था की गई थी। सन् 1959 में मैसूर विश्वविद्यालय में और 1971 में कर्नाटक विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग की स्थापना की गई।

कर्नाटक में हिंदी प्रचार सभा के अलावा सन् 1961 में स्थापित कर्नाटक हिंदी प्रचार समिति भी यहाँ कार्यरत है। यहाँ हिंदी के समकक्ष विषय सिखाए जाते हैं। यह समिति 50 हिंदी विद्यालय चलाती है और समिति द्वारा संचालित स्नातकोत्तर विभाग में एम.ए. हिंदी का अध्यापन होता है। यहाँ से 'भाषा पीयूष' नामक एक पत्रिका का भी प्रकाशन भी किया जाता है।

कर्नाटक में बेंगलोर विश्वविद्यालय, मैसूर विश्वविद्यालय, गुलबर्ग विश्वविद्यालय, कुवेंपु विश्वविद्यालय, दावणगेर विश्वविद्यालय, तुमकूर विश्वविद्यालय और कन्नड़ विश्वविद्यालय आदि में हिंदी विभाग हैं जहाँ स्नातक एवं स्नातकोत्तर स्तर पर हिंदी का अध्ययन होता है।

इस प्रकार यह दृष्टव्य है कि दक्षिण भारत में हिंदी का पठन-पाठन हो रहा है और निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि हिंदी के प्रचार-प्रसार में दक्षिण राज्यों का महत्वपूर्ण योगदान है।

वैश्विक स्तर पर हिंदी का बढ़ता वर्चस्व

लंबे समय तक ब्रिटिश दासता के अधीन रहे भारत की भाषाओं पर भी अंग्रेजों की गुलामी का काफी असर पड़ा। इसीलिए महात्मा गांधी ने सन् 1918 में आयोजित हिंदी साहित्य सम्मेलन में विश्व की प्राचीन, समृद्ध एवं सरल भाषा, हिंदी को जनमानस की भाषा बताते हुए इसे देश की राष्ट्रभाषा बनाने के लिए कहा था और उसी के बाद से हिंदी को राष्ट्रभाषा का दर्जा दिलाने की कोशिश शुरू हो गई थी। देश की आजादी के बाद गोपालस्वामी आयंगर ने संविधान सभा में हिंदी को राजभाषा बनाने के प्रावधान का प्रस्ताव 12 सितंबर, 1947 को रखा था। हालाँकि गोपालस्वामी आयंगर स्वयं एक अहिंदीभाषी थे, लेकिन वह आजाद भारत के एक दूरदर्शी नेता भी थे। संविधान सभा की

तीन दिनों तक चली बैठक में लंबे विचार-विमर्श के बाद 14 सितंबर, 1949 को एक मत से निर्णय लिया गया कि भारत की राजभाषा 'हिंदी' ही होगी। तत्पश्चात भारतीय संविधान के भाग 17 के अध्याय की धारा 343 (1) में हिंदी को राजभाषा बनाए जाने के संदर्भ में अंकित कर दिया गया कि संघ की राजभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी होगी और संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाले अंकों का रूप अंतरराष्ट्रीय होगा। संविधान सभा के इस महत्वपूर्ण फैसले के बाद राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा के अनुरोध पर हिंदी को हर क्षेत्र में प्रसारित करने के लिए वर्ष 1953 से देश में 14 सितंबर को 'हिंदी दिवस' के रूप में मनाए जाने का निर्णय लिया गया।

हालाँकि इतने वर्षों बाद भले ही आज भी भारत के भीतर ही कई क्षेत्रों में लोग हिंदी का पुरजोर विरोध करते दिख जाते हैं, वहीं दूसरी ओर हमारी राष्ट्रभाषा हिंदी को अब वैश्विक स्तर पर सम्मान मिल रहा है और यह दुनियाभर में धूम मचा रही है। आज दुनिया का प्रत्येक वह कोना, जहाँ भारतवंशी बसे हैं, वहाँ तो हिंदी धूम मचा ही रही है। हिंदी आज दुनिया के अनेक देशों में बोली जाती है और विश्वभर के अनेक विश्वविद्यालयों में पढ़ाई भी जाती है। बहुत सारे देशों में अब वहाँ की स्थानीय भाषाओं के साथ हिंदी भी बोली जाती है। इसके अलावा दुनिया के सैकड़ों विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जाती है और यह वहाँ अध्ययन, अध्यापन तथा अनुसंधान की भाषा भी बन चुकी है। जब हम ऐसे देशों में भी हमारी राष्ट्रभाषा हिंदी को भरपूर प्यार, स्नेह और सम्मान मिलता देखते हैं, जो अपनी मातृभाषाओं को लेकर बहुत संवेदनशील रहते हैं और अपनी मातृभाषाओं को अपनी सांस्कृतिक अस्मिता से जोड़कर देखते हैं तो यह निश्चित रूप से समस्त भारतवासियों के लिए गौरवान्वित होने वाली उपलब्धि ही है।

योगेश कुमार गोयल

संप्रति : जून-1990 से साहित्य एवं पत्रकारिता के क्षेत्र में निरंतर सक्रिय।

प्रकाशन : देश के प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में समसामयिक, सामरिक, पर्यावरण व सामाजिक विषयों पर 13 हजार से अधिक लेख प्रकाशित। अब तक छह पुस्तकें, जिनमें से एक हिंदी अकादमी दिल्ली और दो हरियाणा साहित्य अकादमी से प्रकाशित हैं।

संपर्क : मोबाइल– 9416740584

ईमेल– mediacaregroup@gmail.com

दुनियाभर में हमारे हिंदी फिल्म उद्योग 'बॉलीवुड' का एक विशेष स्थान है, जहाँ प्रतिवर्ष लगभग डेढ़ हजार फिल्में बनती हैं। ये बॉलीवुड फिल्में न केवल भारत में, बल्कि दुनिया के कई देशों में भी बहुत पसंद की जाती हैं। इसीलिए बॉलीवुड कलाकार और इन फिल्मों के निर्माता-निर्देशक अपनी फिल्मों के प्रचार-प्रसार के लिए प्रायः अब विदेशों में भी भव्य शो आयोजित करते हैं। संयुक्त अरब अमीरात में हिंदी एफएम चैनल तो वहाँ के लोगों की विशेष पसंद माना जाता है।

"विश्वभर की भाषाओं का इतिहास रखने वाली संस्था 'एथ्नोलॉग' के अनुसार चीनी तथा अंग्रेजी भाषा के बाद हिंदी दुनियाभर में सर्वाधिक बोली जाने वाली तीसरी भाषा है। फिजी के अलावा भी दुनिया के कई ऐसे देश हैं, जहाँ हिंदी बोली जाती है। इन देशों में पाकिस्तान, नेपाल, बांग्लादेश, सूरीनाम, त्रिनिदाद, मॉरीशस, युगांडा, गुयाना, अमेरिका, ब्रिटेन, जर्मनी, न्यूजीलैंड, संयुक्त अरब अमीरात, दक्षिण अफ्रीका इत्यादि शामिल हैं। अमेरिका के अलावा यूरोपीय देशों, एशियाई देशों और खाड़ी के देशों में भी हिंदी का तेजी से विकास हुआ है और निरंतर हो रहा है। रूस के कई विश्वविद्यालयों में हिंदी साहित्य पर लगातार शोध हो रहे हैं।"

संयुक्त राष्ट्र की छह आधिकारिक भाषाएँ चीनी (मंडारिन), अंग्रेजी, फ्रांसीसी, रूसी, स्पेनिश और अरबी हैं, जिनमें से संयुक्त राष्ट्र का अधिकांश कामकाज अंग्रेजी और फ्रांसीसी में ही होता है। जून-2022 के दूसरे सप्ताह में संयुक्त राष्ट्र द्वारा घोषणा की जा चुकी है कि संयुक्त राष्ट्र की वेबसाइट पर अब हिंदी, उर्दू तथा बांग्ला में भी जानकारियाँ मिलेंगी। प्रत्येक भारतवासी के लिए यह गौरव का विषय है कि आज दुनिया के 50 से भी अधिक देशों में 150 से भी ज्यादा विश्वविद्यालयों में हिंदी एक विषय के रूप में पढ़ाई जाती है और 80 से भी ज्यादा विश्वविद्यालयों में हिंदी का पूरा विभाग है। अमेरिका के ही 30 से भी ज्यादा विश्वविद्यालयों में भाषाई पाठ्यक्रमों में हिंदी को महत्वपूर्ण स्थान मिला हुआ है। दुनियाभर के लगभग 55 देशों में हिंदी बोली या समझी जाती है और एक दर्जन देश तो ऐसे हैं, जहाँ हिंदी को पहली, दूसरी या तीसरी भाषा के रूप में मान्यता प्राप्त है। दक्षिण प्रशांत महासागर के देश फिजी में हिंदी को राजभाषा का आधिकारिक दर्जा प्राप्त है। फिजी में इसे 'फिजियन हिंदी' अथवा 'फिजियन हिंदुस्तानी' भी कहा जाता है, जो अवधी, भोजपुरी और अन्य बोलियों का मिला-जुला रूप है। फिजी के अलावा नेपाल, मॉरीशस, सूरीनाम, त्रिनिदाद और टोबैगो इत्यादि में हिंदी वहाँ की मुख्य भाषा में शामिल है। हिंदी अब ऐसी भाषा बन चुकी है, जो प्रत्येक भारतीय को वैश्विक स्तर पर सम्मान दिलाती है।

माना जाता है कि विश्वभर में लगभग 6,900 मातृभाषाएँ बोली जाती हैं, जिनमें से 35-40 फीसदी अपने अस्तित्व के संकट से गुजर रही हैं। दूसरी ओर पूरी दुनिया में करोड़ों लोग हिंदी बोलते हैं और यह दुनिया की तीसरी सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषा बन चुकी है। विश्वभर की भाषाओं का इतिहास रखने वाली संस्था 'एथ्नोलॉग' के अनुसार चीनी तथा अंग्रेजी भाषा के बाद हिंदी दुनियाभर में सर्वाधिक बोली जाने वाली तीसरी भाषा है। फिजी के अलावा भी दुनिया के कई ऐसे देश हैं, जहाँ हिंदी बोली जाती है। इन देशों में पाकिस्तान, नेपाल, बांग्लादेश, सूरीनाम, त्रिनिदाद, मॉरीशस, युगांडा, गुयाना, अमेरिका, ब्रिटेन, जर्मनी, न्यूजीलैंड, संयुक्त अरब अमीरात, दक्षिण अफ्रीका इत्यादि शामिल हैं। अमेरिका के अलावा यूरोपीय देशों, एशियाई देशों और खाड़ी के देशों में भी हिंदी का तेजी से विकास हुआ है और निरंतर हो रहा है। रूस के कई विश्वविद्यालयों में हिंदी साहित्य पर लगातार शोध हो रहे हैं। रूसी विद्वानों की हिंदी में इतनी ज्यादा दिलचस्पी है कि हिंदी साहित्य का जितना अनुवाद रूस में हुआ है, उतना शायद ही दुनिया में किसी अन्य भाषा के ग्रंथों का हुआ हो। हिंदी को विश्व आर्थिक मंच की गणना के अनुसार विश्व की दस शक्तिशाली भाषाओं में से एक माना गया है। 'लैंग्वेज यूज इन यूनाइटेड स्टेट्स-2011' नामक एक रिपोर्ट में तो यह भी बताया जा चुका है कि हिंदी अमेरिका में बोली जाने वाली शीर्ष दस भाषाओं में से एक है, जहाँ इसे बोलने वालों की संख्या साढ़े छह लाख से भी अधिक है। अमेरिकी कम्युनिटी सर्वे की एक रिपोर्ट में बताया गया है

कि अमेरिका में हिंदी सौ फीसदी से अधिक तेज रफ्तार से आगे बढ़ रही है। अंग्रेजी में समय-समय पर कई भाषाओं के शब्दों को सम्मिलित किया जाता रहा है और हिंदी के भी सैकड़ों ऐसे शब्द हैं, जो हिंदी से निकलकर अब अंग्रेजी शब्दकोष का हिस्सा बन गए हैं।

हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए दुनियाभर में वातावरण निर्मित करने, हिंदी के प्रति अनुराग उत्पन्न करने तथा इसे अंतरराष्ट्रीय भाषा

के रूप में प्रस्तुत करने के उद्देश्य से हर साल 10 जनवरी को 'विश्व हिंदी दिवस' मनाया जाता है। यह वास्तव में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिंदी की महानता के प्रचार-प्रसार का एक सशक्त माध्यम है। विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन पहली बार 10 जनवरी, 1975 को नागपुर में किया गया था, जिसका उद्घाटन तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी

द्वारा किया गया था। पहले विश्व हिंदी सम्मेलन में 30 देशों के 122 प्रतिनिधि शामिल हुए थे। उस आयोजन के जरिये विश्व हिंदी सम्मेलन मनाए जाने की विधिवत शुरुआत हो जाने के बाद भारत के अलावा मॉरीशस, यूनाइटेड किंगडम, त्रिनिदाद, संयुक्त राज्य अमेरिका आदि में भी आगामी वर्षों में विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन किया गया। विश्वभर में हिंदी के बढ़ते प्रभाव का ही परिणाम है कि वर्ष 2017 में ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी में पहली बार 'अच्छा', 'बड़ा दिन', 'बच्चा' और 'सूर्य नमस्कार' जैसे हिंदी शब्दों को भी सम्मिलित किया गया। अमेरिका की 'ग्लोबल लैंग्वेज मॉनीटर' नामक संस्था ने अपनी एक रिपोर्ट में बताया था कि अंग्रेजी भाषा में जहाँ करीब दस लाख शब्द हैं, वहीं हिंदी में करीब 1.2 लाख शब्दों का समृद्ध कोष है और इनकी संख्या लगातार बढ़ रही है। तकनीकी रूप से हिंदी को और ज्यादा उन्नत, समृद्ध तथा आसान बनाने के लिए अब कई सॉफ्टवेयर भी हिंदी के लिए बन रहे हैं।

यदि हिंदी बोलने वाले लोगों की संख्या देखें तो माना जाता है कि दुनिया भर में 75 करोड़ से भी ज्यादा लोग अब हिंदी बोलते हैं और जिस प्रकार वैश्विक स्तर पर हिंदी का वर्चस्व लगातार बढ़ रहा है, उसे देखते हुए यह भी कहा जा रहा है कि वह दिन ज्यादा दूर नहीं, जब हमारी हिंदी चीन की राजभाषा को पछाड़कर शीर्ष पर पहुँच जाएगी। इंटरनेट पर भी हिंदी का चलन तेजी से बढ़ रहा है। इसका अनुमान इसी से सहज रूप में लगाया जा सकता है कि दुनिया के सबसे बड़े सर्च इंजन गूगल द्वारा कुछ वर्ष पहले तक जहाँ इंग्लिश कंटेंट को ही विशेष महत्व दिया जाता था, वहीं अब गूगल द्वारा भारत में हिंदी तथा कुछ क्षेत्रीय भाषाओं की सामग्री को भी काफी बढ़ावा दिया जा रहा है। गूगल का मानना है कि हिंदी में इंटरनेट पर सामग्री पढ़ने वाले हर साल करीब 94 प्रतिशत बढ़ रहे हैं, जबकि अंग्रेजी में यह दर प्रतिवर्ष 17 प्रतिशत घट रही है। गूगल के अनुसार आने वाले दिनों में इंटरनेट पर 20 करोड़ से भी ज्यादा लोग हिंदी का उपयोग करने लगेंगे। कहना असंगत नहीं होगा कि हिंदी की बढ़ती प्रतिष्ठा और उपादेयता के कारण ही यह तेजी से वैश्विक भाषा बन रही है।

इंटरनेट पर हिंदी का जो दायरा कुछ समय पहले तक कुछ ब्लॉगों और हिंदी की चंद वेबसाइटों तक ही सीमित था, अब हिंदी अखबारों की वेबसाइटों ने करोड़ों नए हिंदी पाठकों को अपने साथ जोड़कर हिंदी को और समृद्ध बनाने में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आँकड़े देखें तो जहाँ वर्ष 2016 में डिजिटल माध्यम में हिंदी समाचार पढ़ने वालों की संख्या लगभग साढ़े पाँच करोड़ थी, वह अब बढ़कर 15 करोड़ से भी ज्यादा हो जाने का अनुमान है। यह हिंदी के प्रचार-प्रसार और वैश्विक स्वीकार्यता का ही परिणाम है कि आज हिंदी अपने तमाम प्रतिद्वंद्वियों को पीछे छोड़ते हुए लोकप्रियता का आसमान छू रही है। अब कई बड़ी-बड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ भी एशियाई देशों में अपनी व्यापारिक गतिविधियों को बढ़ाने के लिए हिंदी के प्रचार-प्रसार पर विशेष ध्यान देने लगी हैं। निश्चित रूप से

यह हमारी राष्ट्रभाषा हिंदी की बढ़ती ताकत का ही परिणाम है, जिसके कारण भारत में बहुत सारी विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनियों को भी अब हिंदी का भी उपयोग करने पर विवश होना पड़ा है। हिंदी की बढ़ती ताकत को महसूस करते हुए ही अमेजॉन, फ्लिपकार्ट, ओएलएक्स, क्विकर इत्यादि कई प्रमुख ई-कॉमर्स साइटें अधिकाधिक ग्राहकों तक अपनी पहुँच बनाने के लिए हिंदी में 'एप' ला चुकी हैं। बहरहाल, इंटरनेट पर हिंदी का चलन जिस तेजी से बढ़ रहा है, उसके मद्देनजर माना जा रहा है कि बहुत जल्द हिंदी में इंटरनेट उपयोग करने वालों की संख्या अंग्रेजी में इसका उपयोग करने वालों से ज्यादा हो जाएगी।

दक्षिण भारत में हिंदी की स्थिति

हिंदी भाषा की स्थिति को हम दो भागों से बाँट सकते हैं। एक—हिंदीभाषी प्रांत और दूसरा है—हिंदीतर प्रांत। हिंदीतर प्रांत में विशेष रूप से दक्षिण भारत आता है। यहाँ तेलंगाना, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, केरल, तमिलनाडु जैसे भू-भाग वाले राज्य हैं तो वहीं पांडिचेरी, अंडमान निकोबार और लक्षद्वीप जैसे केंद्रशासित प्रदेश भी हैं। अब सवाल यह उठता है कि यहाँ हिंदी की स्थिति कैसी है? स्वाभाविक है कि क्षेत्रीय भाषाओं की तुलना में हिंदी का प्रचार-प्रसार कम है, किंतु इसका यह अर्थ नहीं कि दक्षिण भारतीयों का हिंदी से सरोकार नहीं है। सच तो यह है कि दक्षिण भारतीय हिंदी का उपयोग न केवल बोलचाल के लिए, बल्कि अध्ययन के लिए भी करते हैं। यही कारण रहा है कि कई

रचनाएँ तो ऐसी हैं जिसके सामने हिंदीभाषी रचनाकारों की रचनाएँ पानी भरती हैं। बुरहानुद्दीन 'जानम' दक्षिण के बहुत बड़े सूफी कवि हुए हैं। यदि हिंदी में उनके छंदों के ज्ञान का परीक्षण किया जाए तो दाँतों तले उँगली दब जाती है। एक स्थान पर लिखते हैं—

तेरे पंथ कोई चल न सके। जो चले सो चल-चल थके।

पढ़ पंडित पोथी ढोयाँ। सब जाना सुध बुध खोयाँ।

दक्षिण भारत में हिंदी की स्थिति को समझने के लिए उसके सामाजिक और राजनीतिक परिप्रेक्ष्य को समझना होगा। कदाचित यह प्रश्न धर्मवीर भारती के मस्तिष्क में पहली बार कौंधा होगा। यही कारण है कि एक स्थान पर वे कहते हैं—"हमारे प्रथम स्वतंत्रता संग्राम ने हमें पराजय का मुँह इसलिए दिखाया कि हमारे बीच संपर्क की 'एक भाषा' का अभाव था। इस कमी को बाद के राजनेताओं और विचारकों ने भी महसूस किया और 'राजभाषा' हिंदी को राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक एकात्मकता के रूप में स्वीकारा और मान्यता प्रदान की है। इस दिशा में स्वामी दयानंद सरस्वती, केशवचंद्र सेन, राजगोपालाचारी, लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी ने पहल की और ये सभी हिंदीतर भाषा-भाषी थे।"

दक्षिण भारत में हिंदी की सामाजिक स्थिति

सामाजिक शब्द 'समाज' से बना है। समाज शब्द संस्कृत के दो शब्दों 'सम्' एवं 'अज' से बना है। सम् का अर्थ है 'इकट्ठा व एक साथ' और अज का अर्थ है 'साथ रहना', यानी एक साथ रहने वाला समूह। सच्चाई तो यह है कि भारत में उत्तर या दक्षिण नाम के दो अलग-अलग समाज नहीं बसते। इसलिए भारत की सामाजिक स्थिति आमूल प्रत्येक स्थान पर एक जैसी ही रहेगी। रोटी, कपड़ा और मकान जैसी मूलभूत सामाजिक आवश्यकताओं को तेलुगू, तमिल, कन्नड़,

डॉ. सुरेश कुमार मिश्रा 'उरतृप्त'

संप्रति : राज्य संसाधक हिंदी, तेलंगाना सरकार में दो दशकों से कार्यरत। साथ ही राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय स्तर की संस्थाओं में विभिन्न पदों पर कार्य करने का अनुभव।

प्रकाशन : विभिन्न समाचार पत्र-पत्रिकाओं में व्यंग्य, आलेख, समीक्षा, कविता, बालगीत, कहानी, लघुकथा प्रकाशित।

पुरस्कार : तेलंगाना हिंदी साहित्य अकादमी द्वारा श्रेष्ठ नवयुवा लेखक सम्मान, व्यंग्य यात्रा रवींद्रनाथ त्यागी राष्ट्रीय सोपान सम्मान आदि।

संपर्क : मोबाइल— 7386578657

ईमेल— drskm786@gmail.com

मलयालम में भिन्न-भिन्न संज्ञाओं से संबोधित करते हैं, किंतु सभी की आवश्यकता एक है। शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य या फिर कोई भी सामाजिक क्षेत्र देखें तो हमें यह पता चलता है कि संप्रेषण के लिए एक सशक्त भाषा की आवश्यकता पड़ती है। यही कारण है कि दक्षिण भारतीय इस सच्चाई को भली-भाँति समझ रहे हैं।

दक्षिण में हिंदी की सामाजिक स्थिति चार कारकों जैसे—शिक्षा, रोजगार, व्यापार, मनोरंजन के कारण मजबूत होती जा रही है। इनका विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है।

शिक्षा : कुछ वर्षों पहले तक दक्षिण राज्य की शिक्षा में राज्य पाठ्यक्रम का महत्व अधिक होता था। इस कारण वे अंग्रेजी और अपनी मातृभाषा को अधिक महत्व देते थे, किंतु अब स्थिति बदल गई है। एन.सी.ई.आर.टी. जैसे शैक्षिक संस्थानों के चलते राज्यों को सी.बी.एस.ई. पाठशालाओं की ओर अग्रसर होना पड़ रहा है। सी.बी.एस.ई. पाठशालाओं का पूरा संचालन दिल्ली से होता है। राष्ट्रीय स्तर पर प्रतियोगी परीक्षाएँ, जैसे—एन.एम.एम.एस., नीट, जेईई, सीटेट आदि की तैयारी के लिए एन.सी.ई.आर.टी. की पाठ्यपुस्तकों के अतिरिक्त कोई दूसरा विकल्प नहीं होता। इन पुस्तकों का अध्यापन सी.बी.एस.ई. पाठशालाओं में होता है। इस कारण इन पाठशालाओं में प्रवेश लेने वाले बच्चों को आठवीं कक्षा तक हिंदी भाषा को अनिवार्य रूप से पढ़ना पड़ता है। पिछले चार वर्षों में 46 प्रतिशत बच्चे सी.बी.एस.ई. पाठशालाओं में प्रवेश ले चुके हैं। इस तरह तमिलनाडु, केरल, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, कर्नाटक जैसे राज्यों में हिंदी पढ़ने वाले बच्चों की संख्या आश्चर्यजनक ढंग से बढ़ी है।

रोजगार : भारत की जनसंख्या दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है। वह दिन दूर नहीं जब जनसंख्या के मामले में भारत चीन को पछाड़कर विश्व का अत्यधिक जनसंख्या वाला सबसे बड़ा देश बन जाएगा। बढ़ती जनसंख्या से जहाँ मानव संसाधन मजबूत बनता है, वहीं रोजगार की समस्या सबसे बड़ा सवाल बन जाता है। आज दक्षिण भारतीय देश-विदेश के कोने-कोने में काम कर रहे हैं। ये वही लोग हैं जो हिंदी या अंग्रेजी की जानकारी रखते हैं। मध्य एशिया के देशों में नौकरी की खोज में वे अंग्रेजी की तुलना में हिंदी अधिक सीख रहे हैं। 'इंडिया टुडे' पत्रिका ने एक सर्वे में यह पाया कि पिछले एक दशक से दक्षिण भारतीय रोजगार के लिए हिंदी सीखने में अधिक रुचि दिखा रहे हैं। इसका कारण यह है कि रोजगार के विज्ञापनों में हिंदी के जानकार को प्राथमिकता दी जा रही है। यही कारण है कि उत्तर भारत या मध्य एशिया में काम करने वाले किसी भी दक्षिण भारतीय व्यक्ति से भेंट कीजिए, वे हिंदी का उपयोग करते हुए पाए जाएँगे।

व्यापार : व्यापार में लाभ कमाने के बारे में सोचना स्वाभाविक बात है। इसीलिए व्यापारी उपभोक्ताओं को किसी-न-किसी ढंग से व्यापार की कला के माध्यम से अपने से जोड़े रखने का प्रयास करता है। विशेषकर पर्यटन, तीर्थस्थलों व व्यापार के बहाने आने वाले उत्तर भारतीयों को रिझाने के लिए हिंदी में बातचीत करने का प्रयास करते हैं। 'इंडिया टुडे' पत्रिका के अनुसार हिंदी सीखना दक्षिण भारतीयों की मजबूरी बनती जा रही है। इसका कारण व्यापार का बहुत बड़ा हिस्सा हिंदीभाषी प्रांतों से उत्पन्न होता है। उत्तर भारतीय अंग्रेजी की तुलना में हिंदी को अधिक महत्व देते हैं, इसीलिए दक्षिण भारतीय व्यापार के बहाने हिंदी सीख रहे हैं। इतना ही नहीं, वे अपने उत्पादकों को ई-पोर्टल के माध्यमों जैसे—अमेजॉन, फ्लिपकार्ट, ईबे, स्नैपडील, शापक्लूस से बेचने के लिए अंग्रेजी के साथ-साथ हिंदी का सहारा ले रहे हैं।

मनोरंजन : यही वह सामाजिक माध्यम या कारण है जो न केवल दक्षिण भारत को, बल्कि पूरी दुनिया को हिंदी सीखने पर मजबूर कर रहा है। हॉलीवुड के बाद दुनिया में सबसे अधिक बॉलीवुड का सिक्का चलता है। भारत में हर वर्ष 5,000 से अधिक बड़ी फिल्में, 50,000 से ज्यादा लघु फिल्में बनती हैं। मात्र दक्षिण भारत में 1,500 से अधिक सिनेमाघरों में हिंदी फिल्में चलती हैं। अर्थशास्त्र का नियम कहता है कि जहाँ माँग है वहीं आपूर्ति होती है। चूँकि आज दक्षिण में हिंदी की माँग बढ़ती जा रही है, इसलिए सिनेमाघरों में हिंदी फिल्में दिखाई जा रही हैं। दक्षिण के कई बड़े संगीतकार, गीतकार, अभिनेता, अभिनेत्री अन्य कलाकार हिंदी सीखकर हिंदी फिल्मों में अपना भाग्य आजमा रहे हैं। 'बाहुबली' फिल्म के निर्देशक राजमौली ने स्वयं एक वक्तव्य में कहा था कि उन्होंने इस फिल्म के बलबूते एक हजार करोड़ से ज्यादा का व्यापार किया। इसका कारण इस फिल्म का हिंदी में रिलीज होना था। हिंदी गानों के बहाने दक्षिण भारत की वर्तमान युवा पीढ़ी भाषाई भेदभावों के दायरों को लाँघ चुकी है। हिंदी गीत उनकी अब पहली माँग हो चुकी है। इनके अतिरिक्त कई सारे सामाजिक मुद्दे हैं जो दक्षिण भारत में हिंदी की स्थिति को मजबूत बना रहे हैं।

दक्षिण भारत में हिंदी की राजनीतिक स्थिति

दक्षिण भारत की पृष्ठभूमि शेष भारत की तरह वंश, वर्ण, लिंग, भाषा, धर्म, जाति, संप्रदाय, समुदाय, सामाजिक समूह, आर्थिक स्थिति, योग्यता के स्तर और राजनीतिक झुकाव के स्तरों के माध्यम से प्रभावित है। पारंपरिक रूप से, विविधता को कभी-कभी अंतर के रूप में और 'समस्या' को संसाधन न मान, बाधा के रूप में महसूस किया जाता है। इसीलिए तेलुगूभाषी हिंदी के प्रसिद्ध लेखक रमेश चौधरी आरिगपूडि कहते हैं, "भारतीय भाषाओं में हिंदी का विशेष स्थान है, इस विशेष स्थान की अधिकारी वह तभी होगी, जब वह अपने कलेवर में, हाड़-मांस में, स्नायु जाल में दूसरी भाषाओं के साहित्य और जीवन मूल्यों के रक्त संचारित करेगी।" इसी आशय से जुड़ी 'दिनकर' की कविता अत्यंत संदर्भोचित लगती है—"जिस दिन भारत के सभी लोग अपनी पसंद से चुनी हुई सबकी बोली 'हिंदी' को अपनी जानेंगे,

जानेंगे केवल नहीं, वरन् आसानी से हिंदी में करके काम-काज का सुख उठाएँगे, दासत्व न रहने पाएगा, बस उसी दिन सच्चा स्वराज आ जाएगा।"

राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य की तुलना में दक्षिण भारत में सामाजिक-राजनीतिक धरातल पर हिंदी की स्थिति थोड़ी भिन्न है, किंतु ध्यान देने वाली बात यह है कि राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी की स्थिति सामाजिक-राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में आमूल एक जैसी ही है। हिंदी और दक्षिण भारतीय भाषाओं में बोलियों की कमी नहीं है। भारत के पूर्व राष्ट्रपति बाबू राजेंद्र प्रसाद ने कहा था कि "यहाँ दो कोस पर बदले पानी, चार कोस पर बानी"। दक्षिण भारत में बहुत सारी बोलियों में साझा किए जाने वाले विचारों को व्यापक मंच प्रदान करने की दो ही भाषाएँ हैं। एक, हिंदी और दूसरी, अंग्रेजी। चूँकि हिंदी बोलने वालों की संख्या आज भारत में सबसे अधिक है, इसलिए दक्षिण भारत में हिंदी भाषा के मंच से अपने विचारों को दूर-दूर तक पहुँचा रहे हैं। पहले हिंदी के प्रति दक्षिण में काफी विरोध था। इसका बहुत बड़ा कारण यहाँ की राजनीतिक स्थितियाँ थीं। यहाँ के राजनीतिक दल हिंदी भाषा के बहाने उत्तर भारतीयों पर अपना विरोध व्यक्त करने का प्रयास करते थे। इससे उनकी राजनीतिक रोटियाँ सेंकी जाती थीं, किंतु अब परिस्थितियाँ बदल रही हैं।

आज जनसामान्य जो आगे चलकर नेता, अभियंता, चिकित्सक या कुछ और बनना चाहता है, वह हिंदी के प्रति विशेष लगाव दिखा रहा है। बहुभाषी भारत में हिंदी भाषी राज्यों की आबादी 46 करोड़ से अधिक है। 2011 की जनगणना के अनुसार, भारत की 1.2 अरब आबादी में से 41.03 फीसदी की मातृभाषा हिंदी है। हिंदी को दूसरी भाषा के तौर पर इस्तेमाल करने वाले अन्य भारतीयों को मिला लिया जाए तो देश के लगभग 75 प्रतिशत लोग हिंदी बोल सकते हैं। भारत के इन 75 प्रतिशत हिंदी भाषियों सहित पूरी दुनिया में एक अरब से अधिक लोग ऐसे हैं, जो इसे बोल या समझ सकते हैं। इन सभी कारणों से दक्षिण भारत में हिंदी की पैठ बढ़ती ही जा रही है।

तमिलनाडु, कर्नाटक जैसे राज्यों में हिंदी के प्रति गहन शोध कार्य और मूल्यपरक साहित्य की रचनाएँ हो रही हैं। इसका प्रमाण हमें तेलुगू से हिंदी में अनूदित विश्वनाथ सत्यनारायण की 'वेय्यिपड़गलु' (सहस्रफण), पुट्टपर्ति नारायणाचार्य की 'शिवतांडवम्', देवुलपल्ली कृष्णशास्त्री की 'कृष्णपक्ष-प्रवास-उर्वशी', नंडूरी वेंकटसुब्बाराव की 'वेंकी पाटलु वेंकी के गीत', श्री श्री रंगश्रीनिवास राव की 'महाप्रस्थानम्', आलूरि बैरागी की 'नूतलो गोंतुकलु' (कुएँ में आवाज़ें), सी. नारायण रेड्डी की 'विश्वंभरा', मानेपल्ली हृषिकेश राव की 'कोय्यल गुर्रम' (काठ का घोड़ा) रचनाओं से मिलता है। तमिल के कवि कंबदासन हिंदी के सुकुमार कवि पंत जी की रचनाओं से प्रभावित थे। उनकी रचनाएँ 'भारती चरितम्' में पल्लव की झाँकी दिखाई देती है। कन्नड़ के प्रसिद्ध कवि 'श्री' का कविता संग्रह 'होगनसुगलु' (सुनहरे स्वप्न), गुंडप्पा की 'वसंत कुसुमांजलि', बेंद्रे की 'कृष्ण मुरारी', 'पंख', 'मूर्ति' रचनाएँ अत्यंत प्रसिद्ध हुईं। मलयालम में वी.टी. भट्टतिरिप्पाड की 'अटुक्कलयिल', 'निन्नु अरंगतेक्कु', 'ऋतुमती' और 'पाट्टबाकी' हिंदी साहित्य से प्रभावित रही हैं। चूँकि अधिकांश भारतीय भाषाओं की जननी संस्कृत है, इसलिए हिंदी को दक्षिण भारत में पैठ बनाने में अधिक कठिनाई नहीं हुई। हिंदी की प्रगतिवादी कविता का मलयालम अनुवाद देखने पर आपको पता चलता है कि दक्षिण के साहित्यकार हिंदी से स्वयं को जोड़ने के प्रति लालायित हैं—

श्वानों को मिलता दूध-दही बच्चे भूखे अकुलाते हैं।
माँ की हड्डी से ठिठुर चिपक, जाड़ों की रात बिताते हैं॥

मलयालम के रामपुत्तवारियर ने इसी संदर्भ में लिखा है—

क्षुत्क्षामास्तनयाः (शिशवः) लशवाइव।

सन् 1956 के बाद से भारत में भाषावार राज्यों का गठन आरंभ हुआ। अन्य शब्दों में कहें तो मातृभाषा के प्रति मादकता सिर चढ़कर बोल रही थी। मातृभाषा के प्रति मादकता रखना कोई पाप नहीं है, किंतु इस मादकता के द्वारा हिंसा भड़काई जाए, यह अपराध है। महात्मा गांधी ने सन् 1918 में ही घोषित कर दिया था कि यदि भारत को एक सूत्र में बाँधने का काम कोई भाषा कर सकती है तो वह हिंदी है। गांधी जी के असंख्य दक्षिण भारतीय अनुयायियों ने इसे अपनाया। यहाँ तक कि गांधी जी ने अपने सबसे छोटे पुत्र देवदास गांधी को हिंदी की सेवा में लगा दिया था। उन्हीं के परिश्रमवश दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा का उद्घाटन मद्रास में हुआ। यह उनकी दूरदर्शिता का प्रमाण नहीं तो और क्या है?

दक्षिण भारत की भाषाई स्थिति और उसमें हिंदी के स्थान को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिंदी आज दक्षिण भारतीय जनता के बीच संपर्क की भाषा बनने में सफल हो रही है। इसमें फिल्मों के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। अब हिंदीतर प्रांत विशेषकर दक्षिण भारत की फिल्मों का रूपातंरण हिंदी में किया जा रहा है। चूँकि इसमें सामाजिक मुद्दों को संबोधित किया जा रहा है, इसलिए यह भाषा और भी इष्ट बनती जा रही है। हिंदी की भाषागत विशेषता भी यह है कि इसे सीखना और व्यवहार में लाना अन्य भाषाओं की अपेक्षा ज्यादा सुविधाजनक और आसान है। हिंदी भाषा में एक विशेषता यह भी है कि वह लोक भाषा की विशेषताओं से संपन्न है। इसके अतिरिक्त ध्यान देने की बात यह है कि हिंदी में आज विभिन्न भारतीय भाषाओं का साहित्य लाया जा चुका है। विभिन्न भारतीय भाषाओं के लेखकों को हिंदी के पाठक जानते हैं। भारत की भाषाई विविधता के बीच हिंदी की भाषाई पहचान मुख्यतः हिंदी है।

वर्तमान में दक्षिण भारतीय हिंदी के माध्यम से स्वास्थ्य, रोजगार, कृषि, उद्योग तथा व्यापार के क्षेत्र में कदम बढ़ाते जा रहे हैं। अब भाषा के प्रति यहाँ की सोच व्यापक होती जा रही है।

वैश्वीकरण के दौर में 'हिंदी'

विस्तार एवं संभावनाएँ

महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने कहा था कि 'हिंदी विश्व की महानतम भाषा है।' हिंदी लंबे समय से ऐसी भाषा रही है जिसने मात्र विदेशी होने के कारण किसी शब्द का बहिष्कार नहीं किया। वैश्वीकरण के दौर में एक तरफ जहाँ सैकड़ों भाषाएँ मिट रही हैं, दूसरी तरफ यह सवाल उपस्थित है कि क्या ज्ञान और विकास के लिए हिंदी की कोई अहमियत बची है? यह प्रश्न अत्यंत महत्वपूर्ण है और इस पर हमें गंभीरता से विचार करना चाहिए। भाषा का संबंध नॉलेज सिस्टम से है। भारत में भाषा के इतिहास में चार ऐसे मोड़ आए, जिनसे नॉलेज सिस्टम बदला। पहला मोड़ तब आया, जब बुद्ध ने संस्कृत छोड़कर पालि में शिक्षा दी। दूसरा मोड़ तब आया, जब कबीर,

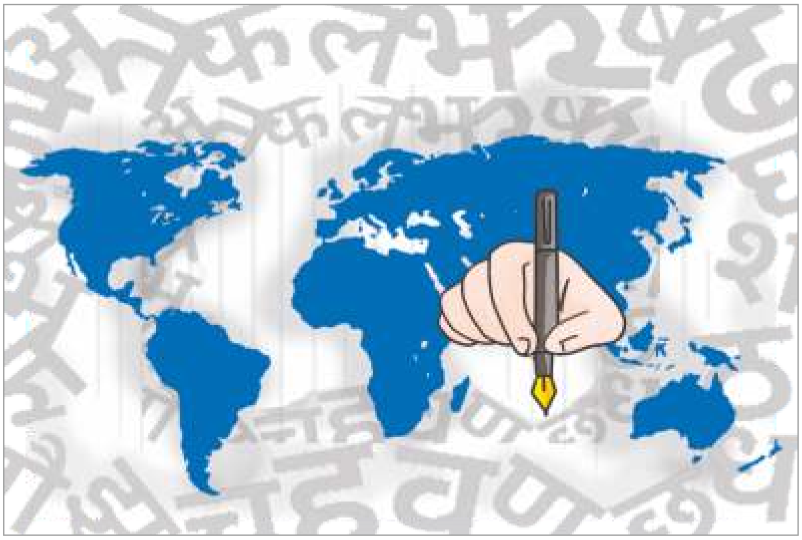

डॉ. मनोज कुमार

जन्म : 24 दिसंबर, 1989, महगाँव, जिला भिंड, मध्य प्रदेश

शिक्षा : पी-एच.डी., एम.फिल.

संप्रति : परियोजना सहायक, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र, जनपथ, नई दिल्ली; संपादक, 'भारत मंथन' शोध पत्रिका।

प्रकाशन : दो पुस्तकें तथा लगभग 1500 आलेख प्रकाशित

सम्मान : भानू साहित्य सम्मान नेपाल, काठमांडू

संपर्क : मोबाइल– 9728424929

ईमेल– dr.manojkumaraarya@gmail.com

सूर, तुलसी, मीरा एवं जायसी जैसे कवि आए। उन्होंने अपने समय की लोक भाषाओं में प्रचुर मात्रा में साहित्य की रचना की। तीसरा मोड़ तब आया जब 19वीं सदी में नवजागरण आया। इसी समय हिंदी भाषा में भारतेंदु हरिश्चंद्र एवं उनके जैसे अन्य कविगण आए। यह एक क्रांतिकारी मोड़ था और यह घटना सन् 1857 में घटित हुई। इस घटना का व्यापक असर बंगाल पर भी पड़ा। माइकल मधुसूदन दत्त आदि ने सत्ता विमर्श की भाषा अंग्रेजी छोड़कर मातृभाषा में लिखना शुरू किया और चौथा मोड़ तब आया, जब सूचना प्रौद्योगिकी व वैश्वीकरण का दौर आया।

गत् 30-35 वर्षों में आधुनिक तकनीकी के विकास से संपूर्ण विश्व में एक व्यापक स्तर पर बदलाव आया है। वैश्वीकरण का सीधा संबंध 'बाज़ारवाद' से है और बाज़ार का सीधा संबंध 'भाषा' से है। बाज़ार में ही भाषा के रूप बनते-बिगड़ते हैं और कालांतर में स्थायी हो पाते हैं। आज बाज़ार ने राष्ट्रीय सीमाएँ तोड़ दी हैं क्योंकि प्रत्येक देश चाहता है कि उसका माल बिके, सात समुंदर पार बिके। माल बाज़ार में बिकेगा तो उत्पादन बढ़ेगा। इस भूमंडलीकृत उपभोक्ता व्यवस्था के तहत एक ओर यदि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर वस्तुओं, सेवाओं तथा संसाधनों के मुक्त आदान-प्रदान की छूट मिली है तो दूसरी ओर देश की भाषा के विकास का मार्ग भी प्रशस्त हुआ है। अब यह संबंधित भाषा पर निर्भर है कि वह किस प्रकार इन नई चुनौतियों का सामना करती है। जो भाषा जितनी उदार होगी और समय के साथ-साथ बदलती चली जाएगी, वह उतनी ही लोकप्रिय होगी। उसकी जीवन क्षमता उतनी ही अधिक होगी। आज किसी भी देशी या विदेशी कंपनी को अपना कोई उत्पाद भारतीय बाज़ार में उतारना होता है,

तो उसकी पहली नज़र हिंदी क्षेत्र पर पड़ती है। इन्हें बखूबी पता है कि 'हिंदी' आमजन के साथ-साथ उपभोक्ता की भाषा है। परिणामस्वरूप हिंदी धीरे-धीरे वैश्विक अथवा ग्लोबल बनती जा रही है। भारत की असली ताकत हिंदी एवं उसकी अन्य भारतीय भाषाएँ हैं। हिंदी भाषा को देश की आधी से अधिक जनसंख्या बोलती एवं समझती है। विभिन्न भाषा-भाषियों के बीच अधिकतर हिंदी भाषा ही संवाद सेतु का काम करती है। व्यवसाय की दृष्टि से देखें तो बाजार बिकने वाली वस्तु की ताकत को देखता है और हिंदी भाषा में वह ताकत है। यही कारण है कि आज सर्वाधिक विज्ञापन भी हिंदी में आते हैं तथा इंटरनेट और सोशल मीडिया पर भी हिंदी का प्रभाव बढ़ रहा है। बाज़ारवाद के कारण हिंदी भाषा का एक नया रूप 'फंक्शनल हिंदी' बनकर सामने आया है। यह उपभोक्ता समाज की हिंदी है, जो हिंदी के पारंपरिक साहित्यिक स्वरूप से भिन्न है। यह हिंदी का एक नवीन विकासशील आयाम है।

आज कई सॉफ्टवेयर और हार्डवेयर अंतर्निर्मित हिंदी यूनिकोड की सुविधा के साथ आ गए हैं। भारतीय भाषाओं को बढ़ावा देने के लिए गूगल ने 'भारतीय भाषा इंटरनेट गठबंधन' बनाने की घोषणा की। इस गठबंधन में विश्व के पहले हिंदी पोर्टल 'वेबदुनिया' को प्रमुख संस्थापक के रूप में शामिल किया गया है। वेबदुनिया की शुरुआत 23 सितंबर, 1999 को हुई थी। यह वह समय था जब इंटरनेट पर भारतीय भाषाओं में समाचार समेत अन्य कंटेंट के बारे में किसी ने सोचा भी नहीं था। आज वेबदुनिया हिंदी समेत तमिल, तेलुगू, कन्नड़, मलयालम, गुजराती व मराठी आदि भारतीय भाषाओं में उपलब्ध है। आज गूगल हिंदी में वॉइस सर्च, हिंदी की-बोर्ड, ट्रांसलेशन आदि सॉफ्टवेयर उपलब्ध करवा चुका है, जिसके माध्यम से हिंदी भाषा में सरलतापूर्वक कार्य किया जा सकता है। आज विश्व में लगभग 245 उच्च शिक्षण संस्थान ऐसे हैं, जिनमें हिंदी-शिक्षण एवं अध्ययन-अध्यापन की सुविधा उपलब्ध है। आज सबसे अधिक किसी चीज की जरूरत है तो वो यह है कि विज्ञान व प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हिंदी का विकास किया जाए। विज्ञान को हिंदी में सोचा और लिखा जाए। निसंकोच इसके लिए भारतीय वैज्ञानिकों, साहित्यकारों, अनुवादकों एवं शोधार्थियों आदि सभी को हिंदी में विज्ञान लेखन को एक आंदोलन के रूप में लेना होगा। आवश्यकता इस बात की भी है कि हिंदी रोजगार और माध्यम की भाषा बने। अभी हाल ही में म.प्र. सरकार द्वारा मेडिकल की पढ़ाई एवं पुस्तकों का हिंदी भाषा में लोकार्पण किया गया, जो कि निस्संदेह इस क्षेत्र में नए आयाम विकसित करेगा।

हिंदी को बदलने में सबसे बड़ी भूमिका बाज़ार, मीडिया एवं हिंदी फिल्मों ने निभाई है। हिंदी हमेशा से सिर्फ किसी एक प्रांत, एक प्रदेश की भाषा नहीं रही है, बल्कि देश की भाषा है, जिसके चलते इसे दूसरे प्रांतों और देशों में समझने लायक बनना पड़ा। कंप्यूटर और इंटरनेट के माध्यम से नई-नई पहलें हमारे बीच आईं और इनके साथ-साथ एक अलग तरह की हिंदी भी, जो सामान्य मानव की समझ के स्तर की थी। जो शब्द हमेशा आते हैं, वे या तो किसी वस्तु की व्याख्या करने, समझाने के लिए या अवधारणा के लिए आते हैं। वस्तुएँ भी बाहर से आएँगी और तकनीक भी, तो उनके पीछे-पीछे आने वाली फिलॉसफी हिंदी को अपने आप सार्वभौमिक कर देगी। जो लोग हिंदी से दूर भागते थे और खुद को अंग्रेजीमय कहलाना पसंद करते थे, वे अब अद्यतन हिंदी की बदौलत ही हिंदी में बोलने, लिखने और पढ़ने में गर्व महसूस करते हैं। विश्व अब यह जान चुका है कि भारतीय चिंतन एवं दर्शन का मूल स्रोत हिंदी है। भारत देश की आत्मा को हिंदी भाषा के माध्यम से जाना-समझा जा सकता है।

वैश्वीकरण से उत्पन्न इन नई परिस्थितियों के आलोक में विश्व स्तर पर हिंदी के प्रचार-प्रसार की आवश्यकता बढ़ गई है। लगभग एक करोड़ बीस लाख भारतीय मूल के लोग विश्व के 132 देशों में बिखरे हुए हैं, जिनमें आधे से अधिक हिंदी से परिचित ही नहीं, अपितु उसे व्यवहार में भी लाते हैं। गत 50 वर्षों में हिंदी की शब्द संपदा का जितना विस्तार हुआ है, उतना विश्व की शायद ही किसी भाषा में हुआ हो। विदेशों में हिंदी के पठन-पाठन और प्रचार-प्रसार का कार्य हो रहा है। यही नहीं दूरसंचार माध्यमों, फिल्मों, गीतों, हिंदी पत्र-पत्रिकाओं आदि ने भी हिंदी के प्रचार-प्रसार में अपनी अहम भूमिका अदा की है।

एक प्रकार से देखा जाए तो आज हिंदी भाषा का व्यापक प्रयोग जनसंचार माध्यमों की अनिवार्य आवश्यकता बन चुका है। मुक्त बाज़ार और वैश्वीकरण के दबावों ने हिंदी को जरूरत और माँग के अनुकूल ढालने में भूमिका निभाई है। विश्व में अब उसी भाषा को प्रधानता मिलेगी जिसका व्याकरण संगत होगा, जिसकी लिपि कंप्यूटर की लिपि होगी। चूँकि हिंदी भाषा का व्याकरण वैज्ञानिक आधार पर बना है। कंप्यूटर में हिंदी प्रयोग की बढ़ती संभावनाओं को ध्यान में रखकर इलेक्ट्रॉनिकी विभाग ने भारतीय भाषाओं के लिए 'तकनीकी विकास' नामक परियोजना के अंतर्गत कई प्रोजेक्ट शुरू किए हैं। कंप्यूटर एवं इंटरनेट के सहारे हिंदी शिक्षा का प्रसार तीव्र गति से होने की संभावना बढ़ गई है। वर्तमान स्थिति में वेबसाइट पर हिंदी इलेक्ट्रॉनिक शब्दकोश उपलब्ध है। इसी तरह अंग्रेजी तथा भारतीय भाषाओं में पारस्परिक अनुवाद प्राप्त करने की सुविधा भी उपलब्ध है। सूचना प्रौद्योगिकी में हिंदी भाषा का प्रचलन धीरे-धीरे बढ़ रहा है। कई विदेशी कंपनियों ने अपनी वेबसाइट पर हिंदी भाषा को स्थान दिया है। विदेशी भाषाओं की फिल्में हिंदी में डब की जा रही हैं। आज तकनीकी की भाषा को आम आदमी के नज़दीक पहुँचाने की आवश्यकता बढ़ गई है। हिंदी में भी कंप्यूटर शब्दावली के निर्माण में हमें बाज़ार और प्रयोक्ता को ध्यान में रखना होगा।

अनूदित लोक कथाओं का संसार

तिलिस्म और चुनौतियाँ

किसी देश की अनूदित लोक कथा पढ़िए, आप बिलकुल किसी अलग ही लोक में होंगे। तिलिस्म तो होगा और आनंद भी, लेकिन सब-कुछ बिलकुल नया-नया सा लगेगा। कथा सूत्र पहचाना हुआ भी लग सकता है, अपनी ज़मीन की किसी कथा से मिलता-जुलता भी, लेकिन फिर भी बड़ी भिन्नता होगी उसमें। पात्रों के नाम अलग होंगे, स्थान अलग होंगे, व्यवहार अलग होंगे, वस्त्र विन्यास अलग होगा, खान-पान की आदतें और उपलब्धता अलग होगी। भारत की कहानी में होगा कि अतिथि आया तो 'खीर-पूड़ी परोसी गई' तो इंडोनेशिया में होगा कि 'बासो-चावल परोसा', न्यूज़ीलैंड में होगा कि 'भुना कुमरा परोसा'। यानी सिर्फ खेल शब्दों के अनुवाद का नहीं है, बात संदर्भों की व्याख्या की भी है।

दुनिया का ऐसा कोई देश नहीं है जिसके पास लोक कथाएँ नहीं हैं या जिसकी संस्कृति की बात बिना लोक कथाओं के उल्लेख के पूरी हो जाती हो। किसी भी देश के, किसी भी समय के समाज को जानना हो तो उस समय की वहाँ की लोक कथाएँ उठा लीजिए, हर बात की झलक वहाँ मौजूद होगी, पेड़-पौधे, जीव-जंतु, लोगों का पहनावा, खान-पान, सामाजिक ढाँचे का गठन, लोकाचार, विषमताएँ, अच्छी बातें, बुरी बातें, सब।

मौखिक परंपरा से पीढ़ी-दर-पीढ़ी कही-सुनी जाती ये कथाएँ जन-जीवन का अकाट्य अंग हुआ करती थीं। किसी भी देश की लोक कथा उठा लीजिए उसमें मनोरंजन भर नहीं मिलेगा, बल्कि कोई सामाजिक शिक्षा, कोई जीवन नीति, कोई मानवीय गुणों को पोसने वाली बात ज़रूर मिलेगी। यही वजह है कि इन कहानियों का हम पर प्रभाव पड़ता है।

जाने कितने सहस्त्र वर्षों से चली आ रही ये कहानियाँ कालांतर में केवल नानी-दादी की मौखिक कहानियाँ मात्र नहीं रहीं, बल्कि इनका लिपिबद्ध होना भी आरंभ हो गया। नैतिक शिक्षा के लिए इनमें से कुछ चुनी गईं जिन्हें धार्मिक आख्यानों में गुरुओं ने भी शामिल किया। एक देश की कथाओं का दूसरे देश की भाषा में अनुवाद भी आरंभ हुआ। यहाँ तक कि वे केवल बच्चों के वर्ग तक सीमित नहीं रहीं, बल्कि अध्येताओं के लिए शोध का, अध्ययन का विषय भी बनीं।

पश्चिम में जहाँ इस दिशा में संकलन और अध्ययन का काम 17वीं सदी में आरंभ हुआ मानते हैं, वहीं भारत में इस दिशा में

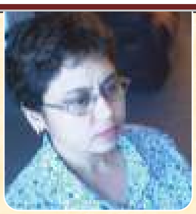

प्रीता व्यास

जन्म : भारत (वर्तमान में न्यूज़ीलैंड की निवासी)।

शिक्षा : एम.एस-सी. (रसायन), एम.ए. (अंग्रेजी साहित्य), बी.एम.सी.।

संप्रति : रेडियो, अखबार, पत्रिका (लोकमत समाचार, नागपुर/मेरी सहेली, मुंबई) में काम किया। भारत की कई पत्रिकाओं के विशेषांकों का संपादन, न्यूज़ीलैंड से प्रकाशित होने वाली त्रिभाषाई पत्रिका 'धनक' की हिंदी संपादक।

प्रकाशित कृतियाँ : हिंदी–'पत्रकारिता परिचय और विश्लेषण', 'इंडोनेशिया की लोककथाएँ', 'दादी कहो कहानी', 'बालसागर क्या बनेगा', 'जंगलटाइम्स', 'कौन चलेगा चाँद पे रहने', 'लफ़्फ़ाज़ी नहीं है कविता'। अंग्रेजी–छह से 12 साल के बच्चों के लिए 175 पुस्तकें प्रकाशित। किसी भारतीय लेखक द्वारा पहली बार हिंदी और इंडोनेशिया भाषा में प्रकाशित द्विभाषाई पुस्तकें–'परचाकापान सेहारी हारी' (दैनिक वार्तालाप), 'टाटा बहासा हिंदी' (हिंदी व्याकरण) और 'हिंदी सेहारी हारी'।

काम-काज देर से शुरू हुआ, पिछली सदी से। वैसे तो इस क्षेत्र में अनेकानेक भारतीय विद्वान, साहित्यकार, लेखक, गुरु आदि सभी महत्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं, लेकिन यह माना जाता है कि लोक साहित्य का अध्ययन करने वाले फ्रांसीसी मिशनरी Abbe J.A. Dubois की लिखी पुस्तक "Hindu Customs Manners and Ceremonies" भारतीय लोक साहित्य के अध्ययन का प्रथम ग्रंथ है। उसके बाद ही भारत के अलग-अलग प्रदेशों में अलग-अलग विद्वानों ने कथाओं के संकलन और संवर्धन का कार्य आरंभ किया और वो खज़ाना खुलने लगा जिस विशाल भंडार पर जैसे अब तक ताला जड़ा हुआ था।

"अनुवाद के कार्य इस दृष्टि से सराहनीय होते हैं कि वे न पढ़ सकने या समझ सकने वाली भाषाओं के साहित्य को आपकी अपनी भाषा में उपलब्ध करा देते हैं, लेकिन खतरा यही होता है कि अनुवादक की उस भाषा पर पकड़ और उस समाज की रीत-नीत का ज्ञान यदि कम है तो कथा अपना अर्थ तक खो सकती है। एक तरह से सारा कौशल अनुवादक की समझ, सोच और चातुर्य पर टिका होता है। लोक कथाओं के अनुवाद में जो सबसे चुनौतीपूर्ण बात होती है वो यह कि आप उस दूसरे देश की भाषा और संस्कृति को जाने बगैर अगर काम करते हैं तो बहुत खतरा इस बात का है कि उसका मूल स्वरूप नष्ट हो सकता है।"

लोक कथाएँ सिर्फ किस्से नहीं होते, बल्कि ये लोक के चित्र को उसकी समग्रता में प्रस्तुत करने वाला कैनवास होते हैं। विभिन्न देशों की कथाओं को पढ़ते हुए ये चित्र स्वतः आँखों में उभरने लगते हैं। हर देश की कथाओं में भिन्नता है और हर देश के हर प्रांत या हर क्षेत्र की कथाओं में भी आपस में भिन्नता है। सुदूर अतीत की परंपरा की संवाहक ये कथाएँ कई बार मिलती-जुलती सी भी प्रतीत होती हैं। एक कथन स्मृति में आ रहा है—"सर्वतः पणिपाद तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्। सर्वतः श्रुति मल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥", यानी जिस तरह परम तत्व परमात्मा हर जगह व्याप्त है, उसी तरह कहानी भी हर जगह व्याप्त है।

जब मनुष्य ने एक देश से दूसरे देश जाना और बसना आरंभ किया तो संस्कृतियों की परस्पर जान-पहचान और अदला-बदली के नए रास्ते भी खुले। हम भाग्यशाली हैं कि उस दौर में हैं जहाँ भूमिगत सीमाओं के अर्थ मिट से गए हैं और पूरी दुनिया सचमुच एक वृहद परिवार-सी हो गई है। इस आसानी ने साहित्य के क्षेत्र में और मुख्यतः अनुवाद के क्षेत्र में कार्य की सहजता को कुछ आसान बना दिया है। विदेश में बसे ऐसे बहुत से साहित्यकार हैं जिन्होंने अनुवाद के महत्तर कार्य किए हैं, जिनमें लोक कथाओं के अनुवाद भी शामिल हैं।

मेरी दादी माँ ने बचपन में रोज कहानी सुना-सुना कर मुझमें जो लोक कथाओं के प्रति रुचि और जिज्ञासा के बीज बोए, उनका ही प्रभाव था कि मैंने इंडोनेशिया प्रवास के दौरान वहाँ की लोक कथाओं में दिलचस्पी ली और बहुत बाद में फिर अनुवाद कार्य भी किया जिसे राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत ने न सिर्फ प्रकाशित किया, बल्कि उन कहानियों के हिंदी के अलावा अन्य भारतीय भाषाओं में भी अनुवाद प्रकाशन को संभव किया। लोक कथाओं के संकलन की रुचि की वजह से ही संभव हुआ कि कई वर्षों के प्रयास के बाद माओरी कथाओं का हिंदी अनुवाद संभव हो सका।

मुझे लगता है कि राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत ने लोक कथाओं के संवर्धन में एक बड़ा सहयोग इस तरह दिया है कि उसने कई देशों की लोक कथाओं के अनुवाद प्रकाशित किए हैं जो बड़े रुचिकर हैं। विदेश में बसे भारतीय रचनाकारों के इस दिशा में हुए अनुवाद कार्य को भारतीय बच्चों के लिए पूरी एक शृंखला के रूप में ही उपलब्ध करा दिया है। 'काँच का बक्सा', पुष्पिता अवस्थी (नीदरलैंड), 'झूठ का थैला', गणिका श्रीवास्तव (क्रोएशिया), 'गोलू-गुडुप-गुडुपदास', प्रमोद शर्मा (हंगरी), 'ड्रैगन सुनामी', हेमा पांडे (जापान), 'अशरीरी आदिवासी', उषा अयंगर (अमेरिकी आदिवासी कहानियाँ), 'नैने—चूचू', प्रीता व्यास (इंडोनेशिया), 'पहाड़ों का झगड़ा', प्रीता व्यास (न्यूज़ीलैंड) आदि उल्लेखनीय हैं।

अनुवाद के कार्य इस दृष्टि से सराहनीय होते हैं कि वे न पढ़ सकने या समझ सकने वाली भाषाओं के साहित्य को आपकी अपनी भाषा में उपलब्ध करा देते हैं, लेकिन खतरा यही होता है कि अनुवादक की उस भाषा पर पकड़ और उस समाज की रीत-नीत का ज्ञान यदि कम है तो कथा अपना अर्थ तक खो सकती है। एक तरह से सारा कौशल अनुवादक की समझ, सोच और चातुर्य पर टिका होता है। लोक कथाओं के अनुवाद में जो सबसे चुनौतीपूर्ण बात होती है वो यह कि आप उस दूसरे देश की भाषा और संस्कृति को जाने बगैर अगर काम करते हैं तो बहुत खतरा इस बात का है कि उसका मूल स्वरूप नष्ट हो सकता है। भाषा की पोशाक बदलते समय कथा के शरीर के लावण्य को यथावत रहना चाहिए।

अनेकता में एकता की विशेषता वाले पूर्व की हों या एकरसता वाले पश्चिम की, भूमध्य रेखा के इस ओर की हों या उस ओर की, गेय शैली में हों या वाचन शैली में, लोक कथाओं में मानवीय मूल गुण हमेशा दिखाई देते हैं। जब आप अनुवाद करते हैं या पढ़ते हैं तो कुछ समानताएँ हैरान करती हैं, जैसे—सार्वभौमिक रूप से राजा, रानी, परियाँ, भूत-प्रेत, अमीर-गरीब, युद्ध, प्रेम, बोलने वाले जानवर, अद्भुत शक्तियों वाले मनुष्य, देवी-देवता, पाँच तत्व आदि मौजूद मिलते हैं। जानवर ज़रूर मिलते हैं, लेकिन यहाँ संदर्भों की भिन्नता मिलती है, आपको जानना ज़रूरी होता है कि कछुआ, हाथी, शेर या चूहा कहीं-किसी पौराणिक या धार्मिक संदर्भ से तो जुड़ा हुआ नहीं है।

इस संदर्भ से जुड़े बिना कहानी अपना अर्थ खो सकती है। चीन की कहानियों में ड्रैगन मिलेगा तो भारत की कहानियों में कामधेनु, ऐरावत; न्यूज़ीलैंड की कहानियों में विशाल व्हेल, तानीफ़ा तो जापानी कहानियों में जेनबू, सुजाकू, ब्याको और सेरीयू; अमेरिकी लोक कथाओं में भालू और भैंसे तो अफ्रीकी कहानियों में शेर; इंडोनेशिया की कहानियों में मुर्गे और बंदर।

अनुवाद सुनने में जितना आसान लगता है, उतना होता नहीं है। हर भाषा की विशेषता होती है—व्याकरण, शैली, संरचना। एक ही शब्द अलग-अलग वाक्यों में अलग-अलग अर्थ दे सकता है इसलिए भाषा पर मजबूत पकड़ पहली चुनौती है। इंडोनेशिया की भाषा में बहुवचन के लिए अलग शब्द नहीं होता, शब्द की आवृत्ति की जाती है। उदाहरण के लिए, 'बच्चा' कहलाता है 'अनक' और 'बच्चे'—'अनक-अनक', पुस्तक होती है 'बुकु' और पुस्तकें—'बुकु-बुकु', फूल होता है 'बुंगा' और बहुत से फूल होते हैं—'बुंगा-बुंगा', लेकिन सड़क है 'जालान', पर सड़कें 'जालान-जालान' नहीं हैं क्योंकि यहाँ 'जालान-जालान' का अर्थ है 'सड़क पर घूमना'। हर भाषा में ऐसी बारीकियाँ होती हैं जिनकी जानकारी न होने पर अर्थ का अनर्थ हो सकता है।

लोक कथाओं के अनुवाद के लिए अनूदित की जा रही भाषा के संदर्भों के साथ-साथ संस्कृति, इतिहास और मान्यताओं की जानकारी आवश्यक है। आपको लोक मान्यताओं और विश्वास-अविश्वास या अंधविश्वास की भी जानकारी होना चाहिए। कहीं काला रंग अच्छा माना जाता है, कहीं बुरा। हमारे यहाँ (भारत में) काला रंग नकारात्मकता से जुड़ा हुआ है, लेकिन यूरोप में काला रंग सौम्य और सभ्य पोशाकों का रंग है। अगर वहाँ का राजकुमार काली अचकन पहन कर विवाह करने जाएगा तो हमारे पूर्व देशीय बच्चे को शायद हैरानी हो कि काला क्यों, कोई लाल-पीला क्यों नहीं? अगर किसी कहानी में मछली-चावल परोसा गया आतिथ्य के लिए तो आलू-पूड़ी को बेहतर आतिथ्य जानने वाले बच्चे को इस भिन्नता का स्पष्टीकरण मिलना ज़रूरी है। कहानी में फीनिक्स आए या नागा बेसुकी या तानीफ़ा या ऐरावत या जेनबू तो इनके बारे में खुलासा भी साथ मिलना आवश्यक हो जाता है अन्यथा कहानी कहीं उलझने लगेगी।

हर भाषा के पास अपने मुहावरे और कहावतें हैं और इनका अनुवाद बड़ा चुनौतीपूर्ण हो जाता है। क्षेत्रीय भाषाओं के शब्द, परिहास के शब्द आदि अनुवाद करने में कठिन होते हैं। बुंदेलखंड में अकसर बारिश के दिनों में शाम को सूरज ढलते समय एक तेज प्रकाश-सा होता है तो उस दृश्य को 'दिन फूलना' कहते हैं। मैं आज तक नहीं सोच पाई कि इस 'दिन फूलने' को किसी भी भाषा में किस तरह अनूदित करूँ? ये सीमाएँ हैं, जो भाषाओं के परस्पर ज्ञान के बावजूद आपके पैर बाँधती हैं। मैं नहीं सोच पाई आज तक कि किस तरह पूरा भाषा सौष्ठव और माधुर्य जस-का-तस रखते हुए अनुवाद किया जाए, इन पंक्तियों का "कट-कट रुंड गिरें धरती पर, उठ-उठ मुंड लड़ें तलवार"। इसी तरह हर बार अनुवादक के सामने चुनौतियाँ उपस्थित हो जाती हैं।

इन तमाम चुनौतियों के बावजूद दशकों से हर देश में लोक कथाओं के अनुवाद के कार्य हो रहे हैं और एक बड़े रोचक और तिलिस्मी संसार के द्वार हमारी आगे की पीढ़ियों के लिए खुल रहे हैं। यह ऐसा संसार है जहाँ मनोरंजन भी है और ज्ञान भी। बुद्धि की चतुराई भी है और राजनीतिक निपुणता की सीखें भी। मानवीय गुणों की, सदाचार की शिक्षाएँ भी हैं और मनुष्य के साहस की जय गाथाएँ भी।

ऐसा नहीं है कि ये कथाएँ सिर्फ बच्चों के लिए हैं, इनमें मानवीय मन का, भावों का, सुख-दुख का ऐसा कमाल का चित्रण मिलता है कि मन मुग्ध हो जाता है। दुनिया में पाँच हज़ार से ज्यादा भाषाएँ हैं, लेकिन बोल-चाल की विविधता के बावजूद मूल मंत्र जीवन के सभी जगह एक ही हैं। लोक गाथाओं के अनुवाद का कार्य एक महत्वपूर्ण कार्य है जो जारी रहना चाहिए। अनूदित लोक गाथाओं के संसार की समृद्धि पूरे साहित्यिक जगत की समृद्धि है।

विश्व में हिंदी की वैधानिक उपस्थिति

जहाँ एक तरफ हिंदी भारत की राष्ट्रभाषा, राजभाषा, संपर्कभाषा और भारत की अस्मिता की पहचान है, वहीं अगर दूसरी तरफ हम हिंदी की वैश्विक स्थिति की बात करें तो हिंदी विश्व के सबसे बड़े भाषा परिवार, भारोपीय परिवार की प्रमुख भाषा है। 2019 में वर्ल्ड लैंग्वेज डेटाबेस एथ्नोलॉग के 22वें संस्करण में बताया गया कि संपूर्ण विश्व में 615 मिलियन से अधिक लोगों द्वारा बोली जाने वाली हिंदी भाषा का स्थान तीसरा है, जबकि 1132 मिलियन से अधिक लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषा, अंग्रेजी का स्थान प्रथम और 117 मिलियन से अधिक लोगों द्वारा बोली जाने वाली चीनी भाषा मंडारिन का स्थान दूसरा है। हिंदी केवल भाषा की वाचक नहीं है, बल्कि भारतीय संस्कार, भारतीय संस्कृति, भारतीय इतिहास, भारतीय समाज, भारतीय चेतना की भी वाहक है। सिर्फ भारत में ही नहीं, ग्लोब के लगभग 100 देशों में किसी-न-किसी क्षेत्र में हिंदी का प्रयोग होता है, चाहे वह जीवन के विविध क्षेत्र हो, या अध्ययन, अध्यापन हो। यह अक्षय वट की भाँति है।

दीप्ति अग्रवाल

जन्म : नारनौल (हरियाणा)।

शिक्षा : अंग्रेजी, हिंदी और समाज कार्य और अनुवाद में स्नातकोत्तर उपाधियाँ। डॉ. मिश्रा दिल्ली विश्वविद्यालय से शोध कर रही हैं।

संप्रति : दिल्ली विश्वविद्यालय और इंद्रप्रस्थ विश्वविद्यालय में अतिथि अध्यापक।

लेखन : भारतीय डायस्पोरा, अनुबंधित श्रमिक भारतीय संस्कृति और हिंदी लेखन (फिजी, दक्षिण अफ्रीका, सूरीनाम, त्रिनिदाद, मॉरीशस और गुयाना के संदर्भ में)।

संपर्क : मोबाइल– 9818521188

ईमेल– deeptiaggarwalmail@gmail.com

यह हिंदी का बढ़ता प्रभाव ही है जिसके कारण ऑक्सफोर्ड की हिंदी डिक्शनरी में हिंदी के अनेक शब्द शामिल किए गए हैं, जैसे–संविधान, सूर्य नमस्कार, आधार, गुलाब-जामुन, दादागिरी, अच्छा, डब्बा, हड़ताल, बापू, शादी आदि। विदेशी विद्वानों ने हिंदी के अध्ययन और शोध में बहुत काम किया है। उदाहरण के तौर पर, हिंदी भाषा का पहला व्याकरण डच विद्वान केतलार ने लिखा, हिंदी साहित्य का पहला इतिहास फ्रांस के गार्सा-द-तासी ने लिखा, भारतीय भाषाओं पर पहला सर्वेक्षण अंग्रेज सर जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन ने किया, हिंदी में पहला शोध प्रबंध 'द थिओलॉजी ऑफ तुलसीदास' अंग्रेज विद्वान जे.आर. कारपेंटर ने किया, हिंदी शिक्षण की प्रारंभिक पुस्तकें जॉन बोथविक गिलक्रिस्ट ने तैयार कीं।

पूरे विश्व में हिंदी किसी-न-किसी रूप में विद्यमान है। वर्तमान में हिंदी के वैश्विक स्वरूप को भली-भाँति समझने के लिए हम ग्लोब को तीन भागों में बाँट सकते हैं–

1. भारत के पड़ोसी देश
2. पश्चिमी और विकसित देश
3. गिरमिटिया देश

भारत के पड़ोसी देश

भारत के पड़ोसी देशों में नेपाल, चीन, म्यांमार, पाकिस्तान, बांग्लादेश, भूटान, अफगानिस्तान, थाईलैंड, सिंगापुर आदि आते हैं, जिसमें नेपाल की जनसंख्या का 51 प्रतिशत भाग हिंदीभाषी है और नेपाल के त्रिभुवन विश्वविद्यालय, त्रिचन्द कॉलेज, रामस्वरूप सागर कॉलेज, मोरंग कॉलेज में हिंदी शिक्षण की व्यवस्था है। भारत के दूसरे पड़ोसी देश श्रीलंका में कल्णिय विश्वविद्यालय की हिंदी विभाग की अध्यक्ष इंद्रा दसनायके का हिंदी के विषय में कहना है, "पड़ोसी राष्ट्र श्रीलंका में हिंदी प्रेमियों की कमी नहीं है और वे भारत को समझने के लिए हिंदी की महत्ता से सुपरिचित हैं।" श्रीलंका के जयवर्धनपुरा विश्वविद्यालय और कोलंबो में हिंदी शिक्षण दिया जाता है। म्यांमार में गांधी महाविद्यालय में साहित्य रत्न तक की परीक्षाएँ होती हैं। पाकिस्तान के लाहौर विश्वविद्यालय और इस्लामाबाद के 'स्कूल ऑफ मॉडर्न लैंग्वेज' में हिंदी की व्यवस्था है। इसी तरह बांग्लादेश का ढाका विश्वविद्यालय हिंदी शिक्षण दे रहा है। भूटान में हान तथा बुंयांग के विद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जाती है। अफगानिस्तान में काबुल के केंद्रीय विद्यालयों में हिंदी विषय की व्यवस्था है। थाईलैंड में बैंकॉक के शिल्पाकोन विश्वविद्यालय में हिंदी शिक्षण दिया जाता है। डॉ. चालोंगसारबदनूक यहाँ के प्रमुख हिंदी सेवी हैं।

पश्चिमी और विकसित देश

विकसित देशों में भी हिंदी ने अपनी पहचान को कायम रखा हुआ है। जापान के तोकाई, ओतानी और र्‌यूकोक विश्वविद्यालयों में हिंदी शिक्षण दिया जाता है। जापान के ही प्रो. ताकाकुसु, प्रो. हिन्देयाकी इशीदा, दोशीकुमी मिजुनो, सेत्स सुजुकि, प्रो. मिजोकामी आदि हजारों विद्यार्थियों को हिंदी शिक्षण दे रहे हैं। कोरिया में हांकुक और पूसान, और सिओल विश्वविद्यालय में हिंदी शिक्षण की व्यवस्था है। वहाँ प्रो. ली जंग हो, श्री हेंग जंग, सुश्री किम सांग छवे जोंग छान प्रमुख हिंदी सेवी हैं। ऑस्ट्रेलिया नेशनल यूनिवर्सिटी में हिंदी काफी समय से पढ़ाई जाती है। इंग्लैंड के कैंब्रिज, ऑक्सफोर्ड, लंदन एवं यॉर्क विश्वविद्यालय में हिंदी भाषा के अध्ययन-अनुसंधान का काम चल रहा है। यहाँ डॉ. इमरे बांगा, डॉ. रोनाल्ड स्टुअर्ट मेकग्रेगर, डॉ. रूपर्ट स्नेल हिंदी की सेवा कर रहे हैं। रूस के मॉस्को विश्वविद्यालय, लेनिनग्राद विश्वविद्यालय, रूसी मानविकी विश्वविद्यालय, सेंट पीटर्सबर्ग आदि विश्वविद्यालयों में हिंदी की अलख जगाई जा रही है। बहुत से विद्वान जैसे पीटर वरान्निकोव, जाल्मन डीम शित्स, अलेक्सान्दर सेंकेविच, येवूनी येलीशेव, फ़िनलैंड के हेलसिंकी विश्वविद्यालय में प्रो. तातिक तिक्के, जेन्स ब्रोरगिन, इटली के प्रो. जोर्जो मिलोनेत्ती, डॉ. के.जी. फ़िलिपी, फ्रांस की सी. बोदिवील, ऑस्ट्रेलिया के रिचर्ड बाज, कनाडा के प्रो. क्रिस्टोफर आर. किंग, उज्बेकिस्तान के प्रो. आजाद समाटोव, रोमानिया की प्रो. निकोलाय ज्वेर्या इन देशों में हिंदी की मशाल थामे हुए हैं। अमेरिका के 110 से ज्यादा विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जा रही है। यहाँ प्रो. माइकल शपीरों, प्रो. कैरीन शोमर, प्रो. क्रिस्टी मेरिल, प्रो. फिलिप लुट्‌जेनडोर्फ, प्रो. सारा कोहिम आदि हिंदी के प्रचार-प्रसार में जुटे हुए हैं। हिंदी की महिमा को हम विभिन्न विदेशी विद्वानों के निम्न कथनों से जान सकते हैं, जैसे—चेकोस्लोवाकिया के ओदोलेन स्मेकल का कहना है, "हिंदी भारत की सामासिक संस्कृति की प्रतीक है।" (प्रतिवेदन, पृष्ठ 51, द्वितीय विश्व हिंदी सम्मेलन) जापान के प्रो. दोई का कहना है, "यदि संसार में एक संपर्क भाषा हो तो वह हिंदी ही हो सकती है।" (प्रतिवेदन, पृष्ठ 54, द्वितीय विश्व हिंदी सम्मेलन) और स्वीडन के श्री श्लीनाद पियर्सन का कहना है, "हिंदी की जय! विश्व की जय! (प्रतिवेदन, पृष्ठ 62, द्वितीय विश्व हिंदी सम्मेलन)

गिरमिटिया देश

जहाँ भारत के पड़ोसी देशों और विकसित देशों में हिंदी का परचम लहरा रहा है वहीं गिरमिट देशों जैसे मॉरीशस, गुयाना, त्रिनिदाद, दक्षिण अफ्रीका, सूरीनाम, फिजी आदि सुदूर देशों में हिंदी कितनी समृद्ध है और कैसी पहुँची? इसकी कहानी बहुत अनोखी है। 150 वर्ष पहले 1834 से 1920 में ब्रिटिश के उपनिवेश भारत से (उस समय हम अंग्रेजों के गुलाम थे) अनुबंधित श्रमिकों को पाँच से 10 वर्ष के अनुबंध (एग्रीमेंट जिसका अपभ्रंश बाद में 'गिरमिट' बना) पर गन्ने की खेती और अन्य श्रम के कार्यों के लिए ले जाया गया था। भारत के अवध, बिहार, मद्रास आदि विभिन्न क्षेत्रों से आए प्रवासी श्रमिकों के लिए आपसी बातचीत करने के लिए हिंदी परस्पर संपर्क का माध्यम बनी और वह संपर्क भाषा हिंदी कालांतर में उन देशों के स्थानीय शब्दों के साथ मिलकर हिंदी की नई शैली के रूप में अवतरित हुई। जिस प्रकार भारत में यह अंतर्प्रांतीय शैलियों जैसे—बंबइया हिंदी, कलकतिया हिंदी, दखिनी हिंदी, नागपुरी हिंदी आदि रूप में विकसित हुई है, उसी प्रकार विदेशों में प्रवासी हिंदी के रूप में फिजी हिंदी, सरनामी हिंदी, नैताली हिंदी, गुयानी हिंदी, त्रिनिदादी हिंदी, मॉरीशस की हिंदी आदि के रूप में विद्यमान है। फिजी में तो 2017 तक हिंदी को राजभाषा का दर्जा प्राप्त था। इन देशों में उस समय भारतीय श्रमिक हीन भावना से ग्रस्त थे और अंग्रेजी के सामने अपनी विभिन्न बोली—मिश्रित हिंदी को लेकर कुंठित रहते थे और हिंदी को अइली-गइली, गंवार भाषा समझते थे, लेकिन वर्तमान में उन भारतवंशियों ने अपनी मेहनत और लगन से अपना एक विशेष मुकाम हासिल किया है और आज वे अपने भारतवंशी होने, भारतीय संस्कृति, अपनी हिंदी की विशिष्ट शैली, अपनी अस्मिता की पहचान को लेकर गर्व महसूस करते हैं, जैसे—मॉरीशस के पहले प्रधानमंत्री शिवसागर रामगुलाम का कहना है, "मैं मूलतः भारतीय हूँ, हिंदी हमारी विरासत है, इसमें हमारी संस्कृति के प्राण हैं।" इसी प्रकार फिजी के हिंदी विद्वान काशीराम कुमुद लिखते हैं, "हम रक्तबिंदु से सींच-सींच हिंदी बिरवा पनपाते हैं।" सूरीनाम के महातम सिंह तो और भी आगे हैं। वे हिंदी को अस्मिता की पहचान बताते हुए लिखते हैं—

> अय दुनिया के लोगों सुन लो, एक खबर मस्तानी।
> हिंदी सीखो हिंदी बोलो हिंदी से ही हिंदुस्तानी॥

गिरमिट देशों में जहाँ मॉरीशस में अभिमन्यु अनत, रामदेव धुरंधर, ब्रिजेन्द्र भगत मधुकर, सोमदत्त बखोरी आदि; फिजी में तोता राम सनाढ्य, कमला प्रसाद मिश्र, जोगिंदर कंवल, सुब्रमनी आदि; सूरीनाम में मुंशी रहमान खान, श्री देवनारायण, श्री जीत नारायण, मोती लाल माढ़े आदि; त्रिनिदाद में श्री छोटकन लाल, श्री भदेस महाराज, श्री हरीशंकर आदेश, गुयाना के लाल बिहारी शर्मा आदि हिंदी की सेवा में लगे हुए थे, वहीं दक्षिण अफ्रीका के हिंदी शिक्षक संघ के तत्वावधान में हीरालाल शिवनाथ, बिरजानन्द गरीब भाई, राम भजन सीताराम और उषा देवी शुक्ल विश्वविद्यालय स्तर पर हिंदी शिक्षण कार्यक्रम से जुड़े हैं। गिरमिट देशों में हिंदी का ऊँचा स्थान है।

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर यह हिंदी के बढ़ते प्रभाव का ही कारण है कि दिल्ली विश्वविद्यालय में ही पिछले 10 वर्षों में हिंदी सीखने आने वाले छात्रों की संख्या ढाई गुनी हो गई है। हिंदी का उद्देश्य विश्वभाषा बनकर उभरना है। इसका राजनीतिक और कूटनीतिक पक्ष है—हिंदी को संयुक्त राष्ट्र की भाषा के रूप में मान्यता मिलना। दूसरा व्यावहारिक पक्ष है हिंदी को बाजार और कंप्युटर की भाषा के रूप में विकसित होना। टीवी के जो कार्यक्रम पहले अंग्रेजी के लिए जाने जाते थे, जैसे—डिस्कवरी, हिस्ट्री, एनिमल प्लेनेट आदि अब हिंदी में भी उपलब्ध हैं। फेसबुक, ट्वीटर, वाट्स एप पर हिंदी में संदेश धड़ल्ले से भेजे जा रहे हैं। ब्लॉग, मेल, ई-बुक आदि में भी हिंदी तीव्र गति से आगे बढ़ रही है। यह हिंदी का वैश्विक प्रभाव ही है जो फरवरी-2023 में सुदूर प्रशांत महासागर में बसे छोटे से द्वीप फिजी में 13वाँ विश्व हिंदी सम्मेलन होने जा रहा है। हम उम्मीद करते हैं कि हिंदी एक दिन संयुक्त राष्ट्र की भी भाषा सूची में शामिल होगी।

विदेशी हिंदी विद्वानों का योगदान

हिंदी भारत की प्रतिनिधि भाषा है। भारत की सामासिक संस्कृति के साथ-ही-साथ वैश्विक संस्कृति के दर्शन हिंदी की रचनाओं में या अन्य भाषाओं से हिंदी में अनूदित रचनाओं में होते हैं। इसीलिए भारतीय संस्कृति को जानने-समझने की इच्छा रखने वाला प्रत्येक विदेशी विद्वान हिंदी सीखना चाहता है।

डॉ. जवाहर कर्नावट

बैंक ऑफ बड़ौदा के कॉरपोरेट कार्यालय, मुंबई में उप-महाप्रबंधक। डॉ. जवाहर कर्नावट बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी हैं। उनका हिंदी भाषा के प्रति विशेष रुझान रहा है। विगत 30 वर्षों से बैंकिंग क्षेत्र में कार्यरत रहते हुए राजभाषा कार्यान्वयन एवं जनसंपर्क के क्षेत्र में उन्होंने अनेक अभिनव कार्य किए हैं। राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंचों पर व्याख्यान, प्रस्तुति, संयोजन एवं संचालन से अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है। एशिया, अफ्रीका, यूरोप एवं उत्तरी अमेरिका के 20 से अधिक देशों में आयोजित अनेक अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों एवं कार्यक्रमों में भागीदारी। लंदन, न्यूयॉर्क, जोहांसबर्ग एवं भोपाल में संपन्न विश्व हिंदी सम्मेलनों में सक्रिय भूमिका। अनेक सम्मानों से अलंकृत हो चुके हैं। देश के पत्र-पत्रिकाओं में निरंतर लेखन कार्य के साथ ही 'विदेश में हिंदी मीडिया' विषय पर भी विशेषज्ञता हासिल। सह-लेखन में प्रकाशित पुस्तक 'आधुनिक भारतीय बैंकिंग : सिद्धांत एवं व्यवहार' को भी अत्यधिक सराहना प्राप्त हुई है।

संपर्क : मोबाइल– 7506378525

ईमेल– jkarnavat@gmail.com

फलतः हिंदी भारत की भौगोलिक सीमाओं को लाँघकर पूरे विश्व में अपना विशिष्ट स्थान बना रही है। हिंदी अपने विविध रूपों में आज न केवल विश्व के अनेक देशों में बोली जाती है, अपितु शैक्षणिक जगत में भी महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर रही है। हिंदी को वैश्विक पथ का पथिक बनाने में बहुतेरे विदेशी हिंदी विद्वानों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। आज अमेरिका, कनाडा, यू.के., ऑस्ट्रेलिया, फिजी, मॉरीशस एवं यूरोप के अनेक देशों में हिंदी भाषा एवं साहित्य के प्रसार में विदेशी विद्वान और प्रवासी भारतीय कदम-से-कदम मिलाकर आगे बढ़ रहे हैं। इसके अलावा फ्रांस, रूस, चीन एवं जापान आदि कई देशों में वर्षों से हिंदी से जुड़े विविध विषयों पर उच्च स्तरीय शोध कार्य हो रहे हैं।

बहुत से लोगों के लिए यह जानना विस्मयपूर्ण हो सकता है कि हिंदी भाषा का पहला व्याकरण डच विद्वान केतलार ने लिखा था और हिंदी साहित्य का पहला इतिहास फ्रांसीसी विद्वान गार्सी-द-तासी द्वारा लिखा गया था। हिंदी और भारतीय भाषाओं का पहला व्यापक सर्वेक्षण अंग्रेज विद्वान सर जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन ने किया था। हिंदी की किसी रचना पर पहला शोध प्रबंध 'द थियोलॉजी ऑफ तुलसीदास' अंग्रेजी विद्वान जे.आर. कारपेंटर द्वारा लंदन विश्वविद्यालय में प्रस्तुत किया गया था। हिंदी शिक्षण की सुव्यवस्थित प्रारंभिक पाठ्यपुस्तकें जॉन बोथविक गिलक्रिस्ट ने तैयार की थीं। मध्ययुगीन संत कवियों की रचनाओं के पाठ-संपादन का कार्य वर्षों तक ल्युवेन विश्वविद्यालय के प्रो. विनांद कैलवर्ट ने किया था। प्रो. आर.एस. मैकग्रेगर्ट का हिंदी-अंग्रेजी कोश, प्रो. दोई का जापानी-हिंदी कोश और प्रो. वेस्क्रोवनी का हिंदी-रूसी शब्दकोश हिंदी शिक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। इसके अलावा दीमशित्स (रूस), पोरिश्का (चेक गणराज्य),

फेयर बैंकर्स (अमेरिका) की हिंदी पाठ्यपुस्तकें, बारान्निकोव (रूस), चार्लिशेव (रूस), सेंकोविच (रूस), रूपर्ट स्नेदल (यू.के.), इमरे बांगा (हंगरी), मारग्रेट जात्सलाफ (जर्मनी), शर्ले बोट्राविल (फ्रांस) और जिलियन राइट (यू.के.) की हिंदी सेवा से सभी परिचित हैं। हिंदी की विदेशी भाषिक शैलियों का अध्ययन राडेन मोग (जो अमेरिका के हैं और प्रज्ञाचक्षु हैं), सूजन हॉम्स (अमेरिका), जे.एफ. सीगज (ऑस्ट्रेलिया), तेयो दामिस्तेख्त (हॉलैंड), आर.के. बार्ज (ऑस्ट्रेलिया), हरमन वान ओल्फिन (यू.एस.ए.) आदि विद्वानों ने किया है। इनके अलावा भी हिंदी भाषा और साहित्य का शोधपरक अध्ययन प्रस्तुत करने वाले विद्वानों के नामों की एक लंबी सूची है।

हिंदी को अपने-अपने देश में प्रतिष्ठित कर वैश्विक रूप प्रदान करने के अलावा इन विद्वानों ने ऐसे बहुमूल्य कार्य भी किए हैं जिनसे संपूर्ण हिंदी समाज लाभान्वित हो रहा है। बेल्जियम के फादर कामिल बुल्के ने अंग्रेजी-हिंदी शब्दकोश की रचना कर एक महान कार्य किया। उन्होंने रामकथा के विशेषज्ञ के रूप में भी अंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की। मेटरलिंक के नाटक 'ब्ल्यूबर्ड' का 'नीलपंछी' शीर्षक से हिंदी में अनुवाद भी उनके द्वारा किया गया। चेकोस्लोवाकिया के डॉ. ओदोलेन स्मेलकल अपनी हिंदी कविताओं के लिए भारत में खूब पहचाने जाते हैं। उनके आठ कविता संग्रह हिंदी में प्रकाशित हो चुके हैं। उन्होंने हिंदी को अपनी दूसरी मातृभाषा माना और अपना सारा जीवन हिंदी की सेवा में अर्पित करने का निश्चय किया। वे हिंदी भाषा पर रचित अपनी कविता में लिखते हैं—

हिंदी ज्ञान
मेरे लिए अमृत पान
जितनी बार पीता हूँ
उतनी बार लगता है
पुनः जीता हूँ

डॉ. स्मेकल ने प्रेमचंद के गोदान को 'चेक भाषा' में अनूदित करके प्रकाशित किया। उन्होंने अनेक भारतीय लोक कथाओं का भी अनुवाद किया और उन्हें प्रकाशित भी कराया।

इंग्लैंड के डॉ. रूपर्ट स्नेदल यूनिवर्सिटी ऑफ लंदन के दक्षिण एशिया विभाग में प्राच्य और अफ्रीकी अध्ययन केंद्र में हिंदी के रीडर रहे हैं। मध्ययुगीन एवं आधुनिक हिंदी साहित्य से संबंधित उनके अनेक शोध पत्र अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रकाशित हुए हैं। उन्होंने डॉ. हरिवंशराय बच्चन की आत्मकथा के अंशों का हिंदी से अंग्रेजी में अनुवाद किया है। इसके अतिरिक्त धर्मवीर भारती की 'कनुप्रिया' का भी अंग्रेजी अनुवाद किया। वर्तमान में वे हिंदी-उर्दू फ्लैगशिप कार्यक्रम के अंतर्गत अमेरिका में हिंदी अध्यापन का कार्य कर रहे हैं।

जापान के डॉ. तोमियो मिजोकामी हिंदी क्षेत्र में एक अन्य विलक्षण व्यक्तित्व हैं। उन्होंने इलाहाबाद, शांति निकेतन और दिल्ली में अध्ययन किया है और हिंदी, जापानी, अंग्रेजी आदि भाषाओं में अनेक पुस्तकें लिखी हैं। उन्होंने हिंदी नाटकों की प्रस्तुति में भी अपना विशिष्ट स्थान बनाया है। रूस के अलेकसई पेत्रोविच बारान्निकोव को तो व्यक्ति नहीं, अपितु संस्था कहा जा सकता है। उन्होंने अपने देश में भारतीय संस्कृति, दर्शन तथा अध्यात्म के अध्यायन को प्रोत्साहित किया। उन्होंने लगभग 250 शोध-पत्र लिखे। वे 'हिंदी-रूसी शब्दावली के जनक' थे। इटली के प्रो. जोर्जो मिलानेत्ति ने अपने अध्ययन की शुरुआत संस्कृत से की। इसके बाद उन्होंने हिंदू धर्म, हिंदू इतिहास, हिंदी साहित्य एवं सूफी साहित्य का भी अध्ययन किया। उन्होंने जायसी के 'पद्मावट' का अवधी से इतालवी में अनुवाद किया, जो वेनिस के मर्सीलियो प्रकाशन से प्रकाशित हुआ।

कैंब्रिज विश्वविद्यालय के हिंदी प्रोफेसर डॉ. मैकग्रेगर का नाम हिंदी के शिक्षा शास्त्रियों में प्रमुखता से लिया जाता है। उन्होंने पाश्चात्य देशों में हिंदी प्रशिक्षण के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। डॉ. मैकग्रेगर एक उच्च कोटि के अनुवादक, संतकाव्य के विशेषज्ञ और व्याकरण के पंडित रहे। उन्होंने विदेशी हिंदी विद्यार्थियों के लिए "हिंदी मौखिक अभ्यास माला" नामक पुस्तक प्रकाशित कराई थी, जो बहुत उपयोगी सिद्ध हुई। डॉ. मैकग्रेगर ने 'आउटलाइन ऑफ हिंदी ग्रामर' नामक महत्वपूर्ण पुस्तक लिखी, जिसे सारे यूरोप और हिंदी अध्यापन वाले देशों में पाठ्यपुस्तक के रूप में निर्धारित किया गया है।

जर्मनी के डॉ. लोठार लुत्से हिंदी, बांग्ला और कन्नड़ के विद्वान हैं और उन्होंने कई रचनाओं का सीधे इन भाषाओं से जर्मन में अनुवाद किया। उनकी समसामयिक हिंदी कविताओं का जर्मन अनुवाद एक संकलन के रूप में सन् 1968 में प्रकाशित हुआ था। वे एक ओजस्वी हिंदी वक्ता भी थे। भाषा-विज्ञान के सिद्धांतों पर उनका कार्य विशेष उल्लेखनीय रहा। पोलैंड के प्रो. मारिया क्रिस्टोफ ब्रिस्की ने बनारस विश्व हिंदू विश्वविद्यालय से पी-एच.डी. की उपाधि 'कॉन्सेप्ट ऑफ एशियन इंडियन थियेटर' विषय पर प्राप्त की। यह करते हुए उन्होंने हिंदी का भी अध्ययन किया और फिर पोलस्की (पोलिश) भाषा से हिंदी और संस्कृत से पोलस्की अनुवाद के क्षेत्र में सराहनीय कार्य किया।

इस प्रकार भारत के बाहर विदेशी हिंदी अध्येताओं ने हिंदी की धारा को पूरे विश्व में प्रवाहित करने का महत्वपूर्ण कार्य किया। इन विदेशी हिंदी आराधकों ने अपने मौलिक लेखन एवं नई दृष्टि से भारत को भी एक नया रास्ता दिखाया। ऊपर चर्चित विद्वानों के अलावा दक्षिण-पूर्व एशिया के थाईलैंड, श्रीलंका, चीन, नेपाल, कोरिया, फिजी, मॉरीशस, रोमानिया, बुल्गारिया, हंगरी, फ्रांस, नार्वे, अमेरिका, सूरीनाम, त्रिनिदाद और ऑस्ट्रेलिया आदि अनेक देशों में कई विदेशी विद्वान हिंदी भाषा और साहित्य का गहरा अध्ययन कर हिंदी तथा भारतीय संस्कृति को वैश्विक रूप प्रदान करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं।

इंटर आर्ट्स, जिला केंद्रीय पुस्तकालय और 'आवारा मसीहा'

एक दफे के मैट्रिक फेल ने दूसरे साल में संतोषजनक नंबरों से मैट्रिक पास होने के बाद घर और रिश्तेदारों की सैकड़ों लानतों और अफसोस के साथ इंटर आर्ट्स लिया और हाय-तौबा गाँववालों तथा रोज सुबह घर पर चाय पीने वालों की हुई। ऐसा नहीं था कि यह पहली दफा ही रहा था। एक नजदीकी रिश्तेदार, जो कि तब के मैट्रिक प्रथम श्रेणी थे जब कहा जाता था कि परीक्षा में गन्ना मिल की पर्ची भी लिख दो तो प्रथम श्रेणी मिल जाएगा। उन्होंने मुझे लताड़ते हुए, मेरे नॉन-मैट्रिक किसान पिता के सामने भविष्यवाणी की—"अड़तालीस परसेंट! ये नंबर हैं जनाब के! अरे जेनरल में हो, रेलवे में टीसी की नौकरी नहीं मिलेगी! लमहर हो तो क्या सोचते हो सिपाही या आर्मी बहाली में चले जाओगे! अरे मूर्खराज वहाँ भी कम-से-कम 50 प्रतिशत चाहिए। अब इंटर भी आर्ट्स ले लिया बेहूदा! न इंजीनियरिंग का सोचा, न मेडिकल का, क्या करोगे, पाकविज्ञान करना है क्या?"—उनके कहने का कोई कारण रहा होगा जिसमें तब मुझे इतना ही समझ आया कि मेरे किसान पिता के आगे वह स्नातक और शहराती ढब (शहरी चाल-चलन वाले) के रिश्तेदार थे, तो उन्होंने अपने ज्ञान और अधिकार भाव से मुझे रगेद दिया था। मेरे पास सुनने के सिवा कोई चारा नहीं था, न मैं इतनी पतली चमड़ी का था कि फेल होने के बाद आत्महत्या के बारे में सोचूँ। ऐसे कमेंट्स दैनिक, साप्ताहिक और पाक्षिक के लिहाज से बीते साल से सुन रहा था तो एक अलग किस्म का ढीठपन मुझमें आ गई थी।

डॉ. मुन्ना कुमार पांडेय

जन्म : 01 मार्च, 1982, सिवान, बिहार।

शिक्षा : पी-एच.डी., एम.फिल.।

संप्रति : सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग, सत्यवती कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय।

प्रकाशन : दो पुस्तकें प्रकाशित तथा एक दर्जन से अधिक शोध लेख प्रकाशित, वेब पोर्टल पर 40 से अधिक लेख प्रकाशित।

सम्मान : हिंदी प्रतिभा सम्मान, मैथिलीशरण गुप्त, प्रो. सावित्री सिन्हा स्मृति स्वर्ण पदक।

संपर्क : मोबाइल– 9013729887

ईमेल– makpandeydu@gmail.com

पर किस्मत देखिए इंटर आर्ट्स के रिजल्ट में कमला राय कॉलेज में ठीक नंबरों से प्रथम श्रेणी में पास हो गया, पर बिहार इंटरमीडिएट काउंसिल की मार्कशीट छपाई की कृपा से मेरे मार्कशीट पर मेरा नाम नहीं छपा। नतीजा भागदौड़ का, एक और साल कॉलेज और उसके अजीब व्यवहार वाले प्रिंसिपल मल्लिक जी की कृपा से बरबाद हुआ, दूसरा साल खुद की मेहनत से पटना इंटर काउंसिल के अधिकारियों, क्लर्क दलालों से डील करते, नतीजा दूसरा साल भी चौपट हुआ, तीसरा साल खालीपन की देहरी पर था और इंटर के साथी बी.ए. ऑनर्स के अलग-अलग कोर्स में दाखिल हो चुके थे। सहानुभूति की लहर घर से रिश्तेदारों तक में 10वीं फेल होते ही खत्म हो चली थी, सो उनसे क्या कहते। जिंदगी कॉलेज को पैसा देकर रिजल्ट लाने और कभी खुद गोपालगंज-पटना करते बीत रही थी।

इंटर और तीन साल गैप का वह समय एक अजीब किस्म के खालीपन का था। 12वीं हो भी गई थी और एक तरह से नहीं भी। संगी-साथी सभी ऊँची कक्षाओं में चले

गए थे, मेरे हिस्से उनके रोजमर्रा के किस्से-कहानियाँ और थोड़ी-सी संगति थी। बाद के समय में मेरे हिस्से एक बड़ा खालीपन हमेशा साथ रहता। वह न गाँव के क्रिकेट ग्राउंड में क्रिकेट खेलने से पूरा हो रहा था, न ही मिंज स्टेडियम के पास संगीत विद्यालय में जाकर गिटार की शिक्षा लेने से। यह बस एक तरीके से मन बहलाने, समय काट लेने के, एक और उदास दिन बिता लेने के साधन भर थे। सेंट जेवियर

स्कूल के पीछे, नेहरू युवा केंद्र का कार्यालय था, जिसमें एक छोटी-सी लाइब्रेरी थी। उस ऑफिस के बाबू, जिनका नाम अब याद नहीं, किसी युवा को अलमारी से किताब जारी करते तो ऐसी शक्ल बनाते गोया, जवान बेटी के पिता को घर की तरफ उड़ती-सी नजर डालते गुजर जाने वाले हर लड़के को देखने के बाद होती है। जिले के वकील और गीत-ग़ज़ल-साहित्य-संस्कृति-संगीत के अद्‌भुत मिश्रण वाले मनीष भैया की वजह से (सच कहूँ तो दबाव की वजह से) नेहरू युवा केंद्र के बाबू/इंचार्ज किताब देते थे, लेकिन उन किताबों के पन्नों से अधिक सलाह देते हुए, जिनमें सबसे 'आकर्षक' था—सरकारी मटेरियल है, बउवा, ध्यान से।—मैं 'जी-जी' करता तब तक मनीष भैया तपाक से कूद पड़ते, "अरे, सर छोटा भाई है बहुत सिंसियर है। पढ़कर लौटा देगा"। मैं तब बाबू साहब को देखकर सोचता था ऐसे लोगों को युवा केंद्रों का इंचार्ज क्यों बनाया जाता है, जिन्हें युवाओं की सारी योजनाएँ अलमारी में बंद रखनी होती हैं। खैर! मुझे याद है जब एक दफे उसी बाबू ने पूछा कि किस कक्षा में हो? उनको क्या बताते कि इंटर में हैं भी और नहीं भी?—बस तभी फिर मनीष भैया ने बीच में कूदकर कहा था—"फिलहाल, इंटर है फिर बी.ए. करेगा। लिखने-पढ़ने वाला है, बहुत अच्छा करेगा और हाँ कितबवा लौट के आ जाएगा, काहें टेंसन लेते हैं?"—बाबू साहब खिसियानी हँसी हँसकर रह गए थे। मुझ पर उनका ऐसा भरोसा मेरे दिवंगत संगीत गुरु आदरणीय यादवेश्वरी प्रसाद वर्मा गुरुजी और बाद में गोप बाबू लाइब्रेरियन को ही हुआ था। मनीष भैया गुरु भाई भी थे, ऐसे एक-न-एक भैया हर जिले में रहते हैं, जिनकी उपस्थिति उन कस्बों की युवा उम्मीदों को जैसे-तैसे जिंदा रखती है।

नेहरू युवा केंद्र के उस एक अलमारी भर किताबों की लिस्ट आज भी मेरे पास है, जिनमें से बमुश्किल चार से पाँच किताब ही नहीं होंगी मेरे पास। इन किताबों में पहली ही किताब 'तमस' थी। फिर, 'अंततः' (सुरेंद्र तिवारी), 'कायाकल्प' (प्रेमचंद), 'छाया मत छूना मन' (हिमांशु जोशी) और 'आँख की किरकिरी' (टैगोर)। आज मेरी पक्की धारणा है कि युवाओं के लिए बने ऐसे केंद्रों पर वैसे बाबू न बहाल हों, जिनका किताबों की उपयोगिता से लेना-देना न हो, पर साथ ही, ऐसे मनीष भैया जैसे लोग सबके इर्द-गिर्द हों। मुझे याद है कि राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय का नाम पहली बार उनसे ही सुना था, जो बाद में दिल्ली में मेरा दूसरा पसंदीदा ठिकाना हुआ। मुझे आज भी लगता है मनीष भैया गलत पेशे में हैं।

इस उदासी भरे दौर से गुजरते और सुबह-शाम-दोपहर गिनते और शहर के कभी पूरा न बन सके स्टेडियम में बैठकर दिन बिता देने की मजबूरी में एक रोज जिला केंद्रीय पुस्तकालय से परिचित हुआ। दरअसल, मेरे जिले में सिनेमा रोड है। शायद हर जिले में होता होगा। उसी सिनेमा रोड में शिक्षा विभाग का ऑफिस था। शिक्षा विभाग की इमारत की अवस्था, बिहार में शिक्षा की हालत जैसी ही थी, लेकिन उस बाउंड्री में घुसते ही दाहिनी तरफ एक ऊँची सीढ़ी के बाद दो कमरे की एक क्रीम व्हाइट रंग की इमारत थी। तब मैं खुद भी नहीं जानता था, मेरी जिंदगी के सबसे बुरे हिस्से के सबसे महत्वपूर्ण समय अब यहीं बीतने हैं। जिला केंद्रीय पुस्तकालय की ओर कोई जाता दिखता भी नहीं था। एक तरह से वह शिक्षा विभाग में गैर-जरूरी उपस्थिति जैसा था, जहाँ शिक्षक भी नहीं जाते थे।

शिक्षा विभाग के अहाते में स्थित जिला केंद्रीय पुस्तकालय अपने-आप में अनूठा और कला-संस्कृति, पुस्तकालय पढ़ने-पढ़ाने की संस्कृति के विपरीत धारा का प्रतिनिधि भी था। उधर आने वालों के लिए शायद वह म्यूजियम से अधिक कुछ नहीं था। जिस रोज मैं उसके अंदर गया, बीच में धूल भरा सेंट्रल टेबल, उस हॉल में चारों ओर अलमारियों के भीतर लंबे समय से कैद कई विधाओं की किताबें और हॉल के पश्चिम में मोटे चश्मे से झाँकते समय से पहले बूढ़े या संभवतः हमेशा बीमार रहने वाले मगध इलाके के गोप बाबू लाइब्रेरियन अपनी एक किताब, लोटा भर पानी, सदस्यता का एक रजिस्टर लिए मेज के दूसरी ओर बैठे मेरी ही तरह दिन काटते लगे थे। भाग्यलीला कहूँ कि संयोग शायद एक जैसे हालात के दो लोग मिलने वाले थे।

मैंने उस रोज गोप बाबू से परिचय किया। जहाँ तक याद है उसकी सदस्यता शुल्क मात्र तीन रुपये की थी और अब मैं बिना किसी 'बाबू' के रहमोकरम के उस मेरी नजर में एक बड़ी लाइब्रेरी का सदस्य हो चुका था और खास बात यह कि मैं वहाँ से एक बार में चार किताबें घर ले जा सकता था। आप समझ सकते हैं जब पढ़ाई की स्थिति त्रिशंकु की हो, घर-रिश्तेदारों में आप बस एक खलिहर

उपस्थिति भर हों, ऐसे में कस्बे में आकर उस पुस्तकालय में बैठने से समय बिताने का एक हौसला और कारण मिला। मुझसे फिर वह जगह न छूटी। गोप बाबू ने मेरे लगातार आने पर वह किया जो एक लाइब्रेरियन को करना चाहिए। उन्होंने शुरू में हर किताब की जगह

“बहरहाल, उन दिनों किताबों की डूब ऐसी लगी कि क्या कहूँ। दिन में घर पर रहता तो पिताजी से रोज डाँट मिल जाती क्योंकि मैं सुबह भैंस के बथान से गोबर काछ कर एक टोकरी में भरकर एक तय स्थान पर इकट्ठा करने, सानी करने, लेदी काटने के बाद ही बैठता था, पर कुछ-न-कुछ रह जाता और डाँट मिलती।”

खुद बताई, मेज की धूल हटाकर हम दोनों ने खुद जगह निर्मित की। मेज पर परत भर धूल और अखबारों के बंडल, किताबों के पन्नों की गर्दीली गंध पूरे हॉल में थी, जिनसे जल्दी याराना हो गया था। नियति कभी-कभी कुछ ऐसा करती है जिस पर सहसा विश्वास नहीं होता। अब गोप बाबू गोपालगंज का वह जिला केंद्रीय पुस्तकालय मेरा दिन भर का अड्डा हो गया था। किसी निष्ठावान नौकरी-पेशे वाले की तरह वहाँ सुबह से शाम तक रहता और कभी-कभार बाहर लगे चाँपाकल से गोप बाबू के लोटे में पानी भी भरकर रख देता तो कभी अखबार में भूँजा रखकर खाते हुए किताबों में दिन बीतता। अब खालीपन के जख्मों पर पुस्तकालय का मरहम था। वहाँ एक रोज विष्णु प्रभाकर की ‘आवारा मसीहा’ मिली। ‘आवारा मसीहा’ पढ़ने से पहले शरत बाबू के लगभग सभी प्रमुख उपन्यास पढ़ गया था। शरत बाबू से प्यार हो गया था।

दिल्ली विश्वविद्यालय में स्नातक के दिनों में जब मैं अपने दोस्तों—नीरज, विजय, ऋचा के साथ विष्णु प्रभाकर जी से मिलने गया था, उन दिनों वह एकदम अंतिम दिनों में थे। लेकिन उन्होंने शरत बाबू की तस्वीर लगा रखी थी और भावुक होते पनियल आँखों से कहा था—“जो हूँ, इन्हीं की वजह से”। शरत बाबू ने कई लोगों पर प्रभाव डाला, उनमें से एक मैं भी था—एक गैर-मजरुआ पाठक भर।

बाकी के मेरे साल यहीं कटे और इस पुस्तकालय में बाद में मेरे एक और अभिन्न मित्र अभय गिरि भी यहाँ शामिल हुए। मेरे मित्रों की संगत अच्छी रही, जिन्होंने मेरे साथ इंटर किया, पर आगे की ऊँची कक्षाओं में गए और मेरे प्रति न उनका भरोसा कम हुआ, न बंधुत्व।

बहरहाल, उन दिनों किताबों की डूब ऐसी लगी कि क्या कहूँ। दिन में घर पर रहता तो पिताजी से रोज डाँट मिल जाती क्योंकि मैं सुबह भैंस के बथान से गोबर काछ कर एक टोकरी में भरकर एक तय स्थान पर इकट्ठा करने, सानी करने, लेदी काटने के बाद ही बैठता था, पर कुछ-न-कुछ रह जाता और डाँट मिलती। घर पर शनिवार-इतवार को किताबों को खत्म कर दूसरी खेप लाने की बात दिमाग में घूमती रहती। घर लिए किताबों को सप्ताहांत में आम के गाछ के नीचे कुर्सी डालकर या काली माई के चबूतरे पर बैठकर जितनी ईमानदारी से खत्म कर लेता था वैसी ईमानदारी अब है कि नहीं, कह नहीं सकता! क्रिकेट मैचों वाले बाकी के दिन (चार बजे से पहले के) जिला केंद्रीय पुस्तकालय और दोस्तों की बैठकों में बीतते रहे। मैंने समय बाँध लिया था। नौ से दस बजे तक घर के लिए, फिर पुस्तकालय (किसी रोज मैच हो तो बात अलग है) और दोस्तों की बैठकी के बाद चार बजे तक घर आना, फिर गाँव के खेल के मैदान में क्रिकेट खेलना, लेकिन बाद में यह हुआ कि पुस्तकालय से निकलकर शामें संगीत विद्यालय में कटनी शुरू हुईं। संगीत का यह सिलसिला एक वर्ष का था। मेरी स्थिति से गुरुजी भी वाकिफ थे और उनकी चिंता में भी मुझ पर एक भरोसा था। जिला केंद्रीय पुस्तकालय, गोप बाबू, गुरुजी का भरोसा किताबों की संगत साथ थी और फिर एक छोटी अवधि के मुकदमे के बाद पटना उच्च न्यायालय के कारण मुझे मेरा रिजल्ट तीन बरस के बाद मिला। फिर जिला छूटा, पुस्तकालय छूटा, संगीत छूटा। मेरा दाखिला रामजस कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय में हुआ। मुझे याद है जब रामजस कॉलेज में दाखिला मिलने के बाद अक्तूबर के 15 दिनों की पहली छुट्टी में घर लौटा तो गुरुजी का भरोसा आँखों में दिखा। तीन साल के (कायदे से तो चार साल) अंतराल के बाद किसी और ने न सोचा था कि मैं आगे पढ़ भी सकूँगा! पुस्तकालयाध्यक्ष गोप बाबू से मिला, वह उनके अंतिम दिन थे। मेरे खलिहर दिनों का उनको पता था, मैं तीन साल से इंटर (आर्ट्स) करके खाली हूँ और एक सतत तनाव में भी। वह मुस्कुराकर उठे, बोले—“हमको लगा तुम अच्छा करेगा। यहाँ से तो फॉर बेटर दिल्ली यूनिवर्सिटी है। देखे न! ईश्वर सब सही करता है।” वह साथ हॉल में आए, शरत बाबू वाली रैक खोली और एक किताब मेरे सामने रखते हुए धूल झाड़कर मुझे देते हुए बोले—“हिंदी साहित्य पढ़ रहे हो न, ये मेरी ओर से ले जाओ। यहाँ तो वैसे भी कोई नहीं आता अब। याद है, तुमने तीन बार इसको जारी कराया था? बोलते थे टाइटल में अपनापन है”। मैंने किताब देखी—“आवारा मसीहा”। किताब लेते हुए एकाएक जिंदगी के एक पिछले पन्ने ने एक लंबा चक्कर जिला केंद्रीय पुस्तकालय का लगाया और मुझे पुस्तकालयाध्यक्ष धुँधले से दिखे। आँखों की किनारी बरबस भीग गई थीं। वह किताब जिला केंद्रीय पुस्तकालय, गोपालगंज के मुहर की छापी समेत आज तक मेरे पास उसी तरह सुरक्षित, संरक्षित है, मेरी जिंदगी के हिस्से के सबसे उदास दिनों की बेहतर याददाश्त लिए। सुना है नए जिलाधिकारी इस पुस्तकालय को जिंदा करने की कोशिशों में हैं, पर मोबाइल में डूबी पीढ़ी और पढ़ने वाले कहाँ से आएँगे? इसका जवाब हम लोगों को ही तो ढूँढ़ना है। फिलहाल खुद-कबूली यही है कि उस पुस्तकालय और उसकी किताबों की संगत न होती तो मैं कहाँ होता...छोड़िए न! इसकी कल्पना भी मैं नहीं करना चाहता!

हिंदी में चिकित्सा, पढ़ाई और प्रायोगिकता

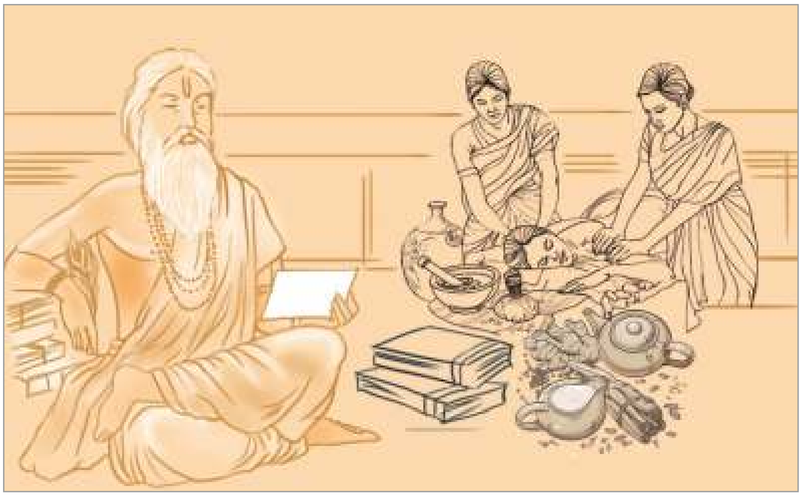

भारतीय औषध विज्ञान का इतिहास 300 ई. पुराना है जिसके मूल प्रवर्तक थे, आयुर्वेद के आचार्य महर्षि चरक और समकालीन आचार्य अग्निवेश ने मिलकर 'चरकसंहिता' की रचना की, जो कि आज भी वैदिक का महान ग्रंथ माना जाता है।

आठवीं शताब्दी में इस प्राचीनतम ग्रंथ का अरबी भाषा में अनुवाद हुआ था, उसी काल में इसका पश्चिमी देशों में प्रचार-प्रसार हुआ। चरकसंहिता में पालि साहित्य के शब्द भी काफी संख्या में हैं। चरकसंहिता में शरीर विज्ञान, निदान शास्त्र और भ्रूण विज्ञान का विस्तार से उल्लेख किया गया है। अलबरूनी ने लिखा है कि औषध विज्ञान में हिंदुओं की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक 'चरकसंहिता' है, इस पुस्तक में आठ स्थान, 120 अध्याय, 12,000 श्लोक और 2000 दवाइयाँ हैं। इसमें भारत के अलावा यमन, चीनी, शक आदि अन्य जातियों की जीवनशैली व रोज़मर्रा के खान-पान का भी ज़िक्र है।

पूनम खनगवाल

शिक्षा : मास्टर्स इन वेटनरी साइंस, एल.एल.बी.।

संप्रति : आबकारी एवं कराधान अधिकारी, गुरुग्राम।

प्रकाशन : 'अजन्मी' पुस्तक प्रकाशित तथा विभिन्न समाचार पत्र-पत्रिकाओं में ब्लॉग, कहानी व कविताएँ प्रकाशित।

संपर्क : मोबाइल– 8708805149

ईमेल– poonamparinita@gmail.com

यहाँ सुश्रुत का उल्लेख भी वर्णन योग्य है। छठी शताब्दी ईसा पूर्व में काशी में जन्मे, शल्य चिकित्सा के जनक 'सुश्रुत संहिता' के रचयिता को शल्य चिकित्सा का प्रणेता माना जाता है। 'सुश्रुत संहिता' में पाँच स्थान, 120 अध्याय, 1120 रोग तथा आठ प्रकार की शल्य क्रियाओं का भी वृहद वर्णन है। आयुर्वेदीय साहित्य में शरीर रचना की विशुद्ध विवेचना 'सुश्रुत संहिता' में की गई है, जिस कारण ही आयुर्वेदगम्य में 'शारीरे सुश्रुतः श्रेष्टः' नामक उक्ति विख्यात है। सुश्रुत ने सर्वप्रथम कान, गले, सिर, नाक व प्रसूति के शल्य कर्म तथा शव छेदन अर्थात पोस्टमॉर्टम विधि का वर्णन किया।

वर्तमान में प्रचलित प्लास्टिक सर्जरी का मूल आधार भी सुश्रुत की प्रख्यात 'नासा संधान' में ही निहित है। बाणभट्ट द्वारा रचित 'अष्टांग हृदय' में औषधि व शल्यचिकित्सा दोनों का ही समावेश है तथा 'चरकसंहिता', 'सुश्रुत संहिता' तथा 'अष्टांग हृदय' को सम्मिलित रूप से संगृहीत होने पर यह नाम दिया गया है।

आज के परिवेश में जबकि हर विषय मनुष्य की तर्जनी की छुअनभर की दूरी पर है, तब भाषा सीखने के अभिप्राय से भले ही बहुत अधिक महत्व न रखती हो, परंतु जब बात इससे बढ़कर स्नातक उपाधि या फिर इसके उपरांत इसके व्यावहारिक प्रयोग व उपयोग की होगी, तब सर्वथा भाषा अपनी महत्ता दर्ज की कराएगी। आयुर्वेद की बात करें तो इसका इतिहास 200 साल पुराना है जब सन् 1822 में पहली बार ईस्ट इंडिया कंपनी ने बंगाल प्रेसीडेंसी के नागरिक व सैन्य प्रतिष्ठानों के लिए प्रशिक्षित देशी डॉक्टर उपलब्ध कराने हेतु कलकत्ता में नेटिव मेडिकल इंस्टिट्यूट एन.एम.आई. की स्थापना की थी, जिसमें तीन साल के पाठ्यक्रम और स्थानीय भाषा में चिकित्सा शब्दावली विकसित करने की कोशिश की गई थी कि इसी क्रम में विभिन्न भाषाओं,

मुख्य रूप से यूरोपीय भाषाओं से शरीर रचना, चिकित्सा, शल्यचिकित्सा पर लिखे विभिन्न ग्रंथों का अनुवाद कराया गया। एन.एम.आई. अधीक्षक पीटर ब्रिटेन से प्रशिक्षित कर रहे हैं, जैसे—मानव शरीर से संबंधित तकनीकी शब्दों की बहुभाषी शब्दावली संकलित की गई। शुरुआती दौर में ही इस संस्था को अंग्रेजीकरण की आँधी से लड़ना पड़ा, दिलचस्प यह रहा कि संस्था के अंग्रेज अधीक्षकों जॉन टीटलेर और बेटन ने इसका कड़ा विरोध किया। हालाँकि वे लंबे समय तक सफल नहीं हो पाए। सन् 1834 और फिर 1835 में मैकॉले ने देशी भाषा और साहित्य पर गहरे प्रहार किए और यही वक्त था जब एन.एम.आई. पर ताला जड़ दिया गया है और स्थानीय भाषा में चिकित्सा पढ़ाने वाली एकमात्र संस्था ने दम तोड़ दिया। इसके साथ ही मूल निवासियों के लिए बढ़ती मेडिकल कॉलेज की माँग पर 1835 में मेडिकल कॉलेज की स्थापना हुई। यह भारत में अंग्रेजी यूरोपीय चिकित्सा शिक्षा का पदार्पण था। फिर अगले कई दशकों में अंग्रेजी भाषा व विज्ञान में उच्च शिक्षा प्रदान करने वाले संस्थानों में अपनी बेहतर पहचान बनाती गई, लेकिन फिर भी राजेंद्र लाल मिश्रा सरीखे के प्रख्यात प्राच्यविद और भाषाविदों ने भारतीय भाषा के उत्थान के लिए अपने प्रयासों को बनाए रखा है। श्री राजेंद्र मित्रा जो कि एशियाटिक सोसाइटी के पहले भारतीय अध्यक्ष थे, उन्होंने 1977 में भारतीय देशी भाषाओं में यूरोपीय वैज्ञानिक शब्दों के प्रतिपादन के लिए वृहद ग्रंथ की रचना की जिसमें भारतीय भाषाओं में अनुवाद के लिए विचार किया गया था। ये प्रयास मील का पत्थर साबित हुए।

सन् 1913 में वर्नाक्यूलर सोसाइटी (विज्ञान परिषद) द्वारा भी हिंदी में विज्ञान पत्रकारिता को बढ़ावा देने के लिए अथक प्रयास किए गए। अध्यक्ष रामदास ने इस कार्य में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। सन् 1915 में विज्ञान परिषद ने विज्ञान पत्रिका प्रकाशित की, अनेक विज्ञान पुस्तकों का भी लेखन व अनुवाद कराया। विज्ञान में लेखन और अनुवाद में सबसे बड़ी समस्या वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली की थी, जिससे निजात पाने हेतु सी.एस.टी.टी. (वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग) की स्थापना की गई। इसका महत्वपूर्ण कार्य शब्दकोश व विश्वकोष बनाना था। आयोग द्वारा अब तक तीन सौ के लगभग शब्दावली निकाली जा चुकी हैं। पहले की शब्दावली बनाना और फिर उसे समझना और समझाना है। इसके लिए आज के युग के नेट और डिजिटलाइजेशन पर प्रयोग करने होंगे जो कि निरंतर जारी भी हैं। भारतीय मेडिकल और इंजीनियरिंग की पाठ्यपुस्तकों के लिए पहले उचित, प्राप्य और हिंदी के प्रयोग अच्छे शब्दों को खोजना, फिर उन्हें लिखना, उसके पश्चात उनके प्रकाशकों की मिन्नतें करना, अपने आप में एक दुर्गम और दुर्लभ कार्य है। इस विषय पर प्रो. त्रिलोक चंद गोयल और जे.पी. ब्रदर्स मेडिकल पब्लिशर्स सराहनीय कार्य कर रहे हैं और अब हिंदी विज्ञान की पुस्तक के रचने में उनके सुपुत्र प्रो. अनूप गोयल भी उनका सहयोग कर रहे हैं। प्रचलित अंग्रेजी शब्दों का हिंदी रूपांतर न केवल कठिन है, बल्कि प्रचलित नहीं होने के कारण समझने में भी मुश्किल है। गोयल पिता-पुत्रों को इसके लिए अनेक नए शब्द गढ़ने पड़े, अब तो ये नई-नई पुस्तकों के नए-नए विषयों, जैसे—शल्यचिकित्सा, सर्जिकल शब्दों की शब्दावली आदि भी लिख रहे है। जे.पी. ब्रदर्स जहाँ प्रकाशन के लिए उम्मीद बनकर उभरे हैं अब तक चार हजार से अधिक स्वास्थ्य विज्ञान की किताबें प्रकाशित कर चुके हैं। यू.एन. पांडा द्वारा लिखित अंग्रेजी-हिंदी शब्दकोश भी एक मददगार के रूप में उभरा है। यदि वर्तमान की बात करें तो वर्ष 2018 में मध्य प्रदेश आयुर्विज्ञान विश्वविद्यालय ने हिंदी में लिखने की सुविधा प्रदान की और ऐसा करने वाला पहला विश्वविद्यालय बना। एम.बी.बी.एस. में करीब 10 प्रतिशत विद्यार्थी तब से हिंदी या अंग्रेजी और हिंदी के मिले-जुले वाक्यों में लिखने का प्रयोग कर रहे हैं और इसके उचित परिणाम भी मिलने लगे हैं।

रूस, यूक्रेन, चीन, जापान, फिलीपींस जैसे देशों में मेडिकल की पढ़ाई मातृभाषा में होती है और गर्व का विषय है कि मध्य प्रदेश अब देश की मातृभाषा हिंदी में मेडिकल की पढ़ाई करवाने वाला पहला प्रदेश घोषित हो गया है। प्रथम वर्ष के एनाटोमी, फिजियोलॉजी और बायोकेमिस्ट्री की पढ़ाई अब हिंदी में ही कराई जाएगी।

97 डॉक्टरों की टीम ने चार महीने तक मेहनत और प्रयास से अंग्रेजी की किताबों का हिंदी अनुवाद किया है। धीरे-धीरे अन्य विषयों में भी अनूदित या हिंदी की पुस्तकें उपलब्ध हो जाएँगी। हिंदी की राह दुर्गम सही, परंतु जब पहला नन्हा कदम बढ़ा ही लिया है तो मंजिल तय होना लाज़िमी है। मार्ग आसान सर्वथा नहीं है क्योंकि मैकॉले की अंग्रेजी न केवल जड़ों में बैठ गई है, अपितु इसने हिंदी को पलीता भी लगा दिया है।

अब यदि हिंदी को पाठ्यक्रम के इस स्तर तक लाना है तो कुछ क्रियात्मक सुधार, समाज में तथा शिक्षा संसार में लाने होंगे। सर्वप्रथम हिंदी को प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्च स्तर पर न केवल अनिवार्य बनाना होगा, अपितु इसका ओहदा भी बढ़ाना होगा। इसे अंग्रेजी से अधिक मान्यता देनी होगी। प्रतियोगी परीक्षाओं में इसका प्रतिशत और अधिक देयमान प्रभावित रूप से बढ़ाना होगा। हिंदी को एक प्रकार का धनात्मक आरक्षण देना होगा। वहीं अंग्रेजी को दोयम दर्जा भी प्रदान करना होगा। प्रचार-प्रसार, व्यवहार, व्यापार और प्रचलन में हिंदी को सर्वथा अग्रगामी रखना होगा। सभी प्रकार के विशेष प्रलोभन, विशेष प्रोत्साहन यहाँ तक कि विशेष छूट भी प्रदान करनी होगी। साथ ही हिंदी को सहज, सरल और आम रूप से प्रयुक्त होने लायक बनाना होगा और इन सबसे बढ़कर हिंदी को उसका खोया हुआ अभिमान, स्वाभिमान वापस लौटाना होगा। तभी हिंदी हमारे ज्ञान-विज्ञान में रच-बस कर हमारी सहायिका और हमारी सहचरी हो पाएगी।

हिंदी और विज्ञान

हिंदी और विज्ञान भारतीय सभ्यता और संस्कृति के अभिन्न अंग रहे हैं। इन दोनों को 'संस्कृतजा' की संज्ञा दी जा सकती है, क्योंकि दोनों ही कहीं गहरे मूल में संस्कृत से जुड़े हुए हैं। संस्कृत में लिखे गए प्राचीन भारतीय ग्रंथों को विश्व के विभिन्न वैज्ञानिक आविष्कारों का आधार माना जाता है। वहीं हिंदी के वर्तमान स्वरूप का उद्भव संस्कृत से होते हुए क्रमशः अपभ्रंश के शौरसेनी, मागधी, अर्ध-मागधी रूपों से हुआ माना गया है। इतने गहरे स्वरूप वाली हिंदी भाषा को देश के लगभग 40 प्रतिशत लोग बोलते और समझते हैं। भारत में केंद्र सरकार और हिंदीभाषी राज्यों की आधिकारिक भाषा भी हिंदी है। वैश्विक भाषाई पारिवारिक पृष्ठभूमि में भारोपियन परिवार की भाषा हिंदी विश्व की लगभग 7,000 भाषाओं में भी अपना विशिष्ट स्थान रखती है। यदि भारत के संदर्भ में देखा जाए तो उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड, बिहार, झारखंड, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, राजस्थान, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश तथा दिल्ली प्रमुख हिंदीभाषी राज्य हैं। इन राज्यों में हिंदी अपने विशिष्ट रूप और विविध बोलियों के रूपों में बोली जाती है।

इसी वाचालगत बहुलता के साथ-साथ हिंदी अपनी सहजता, सरलता, बोधगम्यता और वैज्ञानिकता के कारण विभिन्न विषयों को जानने और समझने के लिए प्रयुक्त होती आई है। शायद ही ऐसा कोई विषय हो, जिसे हिंदी में न लिखा गया हो। यहाँ तक कि विज्ञान जैसे क्लिष्ट माने जाने वाले विषय को भी जब हिंदी में लिखे जाने की शुरुआत सदियों पहले हुई, तब लोक प्रसार के लिए हिंदी विज्ञान लेखन एक उत्तम विधि के रूप में उभरकर आया। इसके लिए मूल रूप से वैज्ञानिक शोधपत्रों और वैज्ञानिक संस्थानों की रिपोर्टों का उपयोग किया जाता है। इस तरह विज्ञान विषयक तथ्यों, शोधों, खोजों और अद्यतन जानकारियों को लोगों तक पहुँचाने के लिए उनको लिखित रूप प्रदान करना ही विज्ञान लेखन कहा जाने लगा। भारत में लोक व्यवहार का सशक्त साधन मानी जाने वाली हिंदी की प्रारंभ से ही विज्ञान के लोकप्रियकरण में महती भूमिका रही है।

भारतीय इतिहास पर दृष्टि डालें तो हम पाएँगे कि 19वीं सदी के उत्तरार्ध में देश में हिंदी में वैज्ञानिक तथ्यों के लेखन द्वारा तत्कालीन भाग्यवादी व अंधविश्वासी परंपराओं में जकड़े ब्रिटिश शासित समाज को तर्क आधारित वैज्ञानिक सोच व संस्कार देने के प्रयास शुरू किए गए थे। उस समय से ही साइंटिफिक सोसाइटी अलीगढ़; वाद-विवाद क्लब, बनारस; काशी नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी; गुरुकुल कांगड़ी और विज्ञान परिषद, इलाहाबाद जैसी संस्थाओं ने आंदोलनात्मक ढंग से काम किया और उर्दू व हिंदी में वैज्ञानिक लेखन को विस्तार दिया। उन दिनों अंग्रेजी तथा दूसरी यूरोपीय भाषाओं से वैज्ञानिक साहित्य का उर्दू, हिंदी और फारसी में अनुवाद किया गया। वहीं शब्दावली निर्माण, पत्र-पत्रिकाओं में वैज्ञानिक लेखन और मौलिक ग्रंथों के लेखन को भी प्रोत्साहित किया गया। उस दौर में रेलवे, कपास, औषधि, कृषि आदि सामान्य वैज्ञानिक विषयों पर सरल, सहज तथा बोधगम्य हिंदी में निबंध और पुस्तकें लिखी गईं। हिंदी में वैज्ञानिक शिक्षा देने के आंदोलन को संगोष्ठी और व्याख्यान मालाओं की सहायता से जनव्यापी बनाने के प्रयास किए गए। आठ वर्ष के परिश्रम से काशी नागरी प्रचारणी सभा ने सन् 1898 में पारिभाषिक शब्दावली प्रस्तुत की। हिंदी में पारिभाषिक शब्द निर्माण के इस सर्वप्रथम सर्वाधिक सुनियोजित, संस्थागत प्रयास में गुजराती, मराठी और बांग्ला में हुए इसी प्रकार के कार्यों का समुचित उपयोग किया गया। सभा का यह कार्य देश में सभी प्रचलित भाषाओं में वैज्ञानिक शब्दावली और साहित्य के निर्माण की शृंखलाबद्ध प्रक्रिया का सूत्रपात करने वाला सिद्ध हुआ।

सन् 1900 में गुरुकुल कांगडी, हरिद्वार ने विज्ञान सहित सभी विषयों की शिक्षा के लिए हिंदी को माध्यम बनाया। वहीं भारतेंदु और

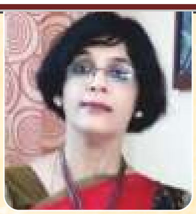

डॉ. शुभ्रता मिश्रा

एक स्वतंत्र लेखिका हैं। 'विज्ञान प्रगति' एवं 'आविष्कार' जैसी अन्य पत्रिकाओं में उनके विज्ञान लेख नियमित प्रकाशित होते रहते हैं।

प्रकाशित पुस्तकें : भारतीय अंटार्कटिक संभारतंत्र, अंतरराष्ट्रीय हिंद महासागर अभियान : स्वर्णिम पचास वर्ष, अंटार्कटिका : भारत की हिमानी महाद्वीप के लिए यात्रा।

सम्मान : मध्य प्रदेश युवा वैज्ञानिक पुरस्कार (1999), राजीव गांधी ज्ञान-विज्ञान मौलिक पुस्तक लेखन पुरस्कार-2012 (2014 में प्रदत्त), वीरांगना सावित्रीबाई फुले राष्ट्रीय फेलोशिप सम्मान (2016), नारी गौरव सम्मान (2016)।

संपर्क : shubhrataravi@gmail.com

द्विवेदी युगीन लेखकों और संपादकों ने भी हिंदी में पर्याप्त वैज्ञानिक लेखन किया। पं. बालकृष्ण भट्ट, पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी, पं. चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' और पं. रामचंद्र शुक्ल जैसे साहित्यकारों ने वैज्ञानिक विषयों पर भी अत्यंत सहज ढंग से लिखा। इस क्रम में इलाहाबाद में सन् 1913 में स्थापित विज्ञान परिषद ने वर्ष 1914 से 'विज्ञान पत्रिका' निकालकर

अद्यतन आँकड़ों के अनुसार, विश्व की तीसरी सबसे बड़ी वैज्ञानिक और तकनीकी जनशक्ति भारत में है। आज भारत विज्ञान और प्रौद्योगिकी अनुसंधान के क्षेत्र में अग्रणी देशों में सातवें, मौसम पूर्वानुमान एवं निगरानी के लिए 'प्रत्युष' नामक शक्तिशाली सुपरकंप्यूटर बनाकर चौथे, नैनो तकनीक संबंधी शोधों में तीसरे और वैश्विक नवाचार सूचकांक में 46वें स्थान पर है।

हिंदी विज्ञान लेखन के लिए नए द्वार खोल दिए। हिंदी में विज्ञान लेखन की संभावनाओं को एक नवीन दृष्टि प्रदान करते हुए आचार्य रघुवीर ने शब्दनिर्माण की वैज्ञानिक पद्धति द्वारा वर्ष 1943 से 1946 के बीच हिंदी सहित तमिल, बांग्ला और कन्नड़ में लगभग छह लाख विज्ञान शब्दों के शब्दकोश प्रकाशित किए। इसके बाद सन् 1950 में उनकी कंसोलिडेटेड डिक्शनरी प्रकाशित हुई। इसी वर्ष लोकेशचंद्र के साथ प्रस्तुत किए गए उनके बृहद कार्य भी 'अ कंप्रेहेंसिव इंग्लिश-हिंदी डिक्शनरी ऑफ गवर्नमेंटल एंड एजूकेशन वर्ड्स एंड फ्रेजिस' (1955, भारत सरकार) के रूप में प्रकाशित हुए। डॉ. रघुवीर ने संस्कृत की धातु, उपसर्ग और प्रत्यय पर आधारित शब्द निर्माण प्रक्रिया द्वारा लाखों वैज्ञानिक शब्द बनाने का मार्ग प्रशस्त कर दिया। इसी काम को आधार बनाते हुए भारत की स्वतंत्रता के बाद वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली के लिए शिक्षा मंत्रालय द्वारा सन् 1950 में स्थापित एक बोर्ड के तत्वावधान में शब्दावली निर्माण का कार्य प्रारंभ हुआ। अंततः सन् 1960 में केंद्रीय हिंदी निदेशालय और सन् 1961 में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग की स्थापना हुई। वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग आदि संस्थाओं ने लाखों की संख्या में विभिन्न विज्ञान शब्द गढ़ डाले हैं और नित नए विषयों पर शब्दनिर्माण का काम अनेक स्तरों पर चल रहा है। इन शब्दों का उपयोग हिंदी विज्ञान लेखन में बखूबी किया जाने लगा है।

स्वतंत्रता के बाद भारत का योजनाबद्ध तरीके से वैज्ञानिक एवं औद्योगिक विकास शुरू हुआ, जिसके बारे में लोगों तक जानकारी पहुँचाने में हिंदी में विज्ञान लेखन को माध्यम बनाया गया। प्रमुख रूप से गुणाकर मुले, प्रो. यशपाल और डॉ. जयन्त विष्णु नार्लीकर जैसे मूर्धन्य विज्ञान लेखकों और संचारकों ने विज्ञान में हिंदी का सार्थक प्रयोग किया है। गुणाकर मुले ने स्वतंत्र लेखन करते हुए लगभग 50 वर्षों में हिंदी में तीन हजार से अधिक विज्ञान लेख लिखे। डॉ. जयन्त विष्णु नार्लीकर ने अपनी कल्पित व अकल्पित वैज्ञानिक कथाओं व लेखों और अनेक पुस्तकों के माध्यम से हिंदी विज्ञान साहित्य को समृद्ध किया है। प्रो. यशपाल ने तो अपनी पुस्तकों तथा पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित साहित्य के साथ-साथ दूरदर्शन के माध्यम से प्रसारित अपने विज्ञान कार्यक्रमों के रूप में विज्ञान की विशाल संपदा हिंदी विज्ञान साहित्य को प्रदान की है। वहीं पुणे के इंटर यूनिवर्सिटी सेंटर फॉर एस्ट्रोनॉमी एंड एस्ट्रोफिजिक्स के विख्यात खिलौना अन्वेषक एवं विज्ञान प्रसारक अरविन्द गुप्ता ने पिछले 25 सालों में 150 से अधिक विज्ञान पुस्तकों का हिंदी में अनुवाद किया है। विगत दशकों से लेकर वर्तमान तक हिंदी में विज्ञान लेखन करने वाले भारतीय लेखकों और लेखिकाओं में डॉ. शिवगोपाल मिश्र, शुकदेव, देवेंद्र मेवाड़ी, दिनेश मणि, पंकज चतुर्वेदी, मनीष मोहन गोरे, नवनीत गुप्ता, कृष्णनंद पाण्डेय, विनीता सिंघल, शुभ्रता मिश्रा, प्रकृति चतुर्वेदी आदि शामिल हैं।

प्रसिद्ध विज्ञान लेखक डॉ. शिवगोपाल मिश्र लिखित 'स्वतंत्रता पूर्व हिंदी में विज्ञान लेखन', 'हिंदी में स्वतंत्रता परवर्ती विज्ञान लेखन', 'हिंदी विज्ञान साहित्य का सर्वेक्षण', 'हिंदी में विज्ञान लेखन : कुछ समस्याएँ' और 'हिंदी में विज्ञान लेखन के सौ वर्ष' आदि कई पुस्तकों द्वारा हिंदी और विज्ञान के परस्पर संबंधों को गहनता से समझा जा सकता है। पिछले कुछ दशकों से हिंदी में लिखे जा रहे विज्ञान साहित्य की लोकप्रिय विधाओं में कहानी, गल्प, नाटक, उपन्यास, लेख, कार्टून, डाक्यूमेंट्री, विज्ञान आधारित फिल्में, व्याख्यान और विज्ञान कविताएँ पाठकों को बेहद आकर्षित करती आई हैं। हिंदी में लिखा जा रहा बाल विज्ञान साहित्य भी काफी पसंद किया जाता है। देश की सबसे लोकप्रिय हिंदी विज्ञान पत्रिकाओं में विज्ञान प्रगति, आविष्कार, इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए, स्रोत, विज्ञान प्रकाश, विज्ञान गरिमा सिंधु आदि शामिल हैं।

पिछले कई दशकों से विज्ञान समाचारों और लेखों को दैनिक हिंदी समाचार पत्रों में विशेष रूप से छापा जाने लगा है। स्वतंत्रता के बाद के 75 सालों में भारत ने अंतरिक्ष विज्ञान, जीवविज्ञान, समुद्रविज्ञान आदि अनेक मूलभूत विज्ञान शाखाओं से लेकर सूचना, प्रौद्योगिकी, कंप्यूटर में अद्भुत अनुसंधान और विकास करके अपनी वैश्विक स्थिति लगातार सशक्त बनाई है। अद्यतन आँकड़ों के अनुसार, विश्व की तीसरी सबसे बड़ी वैज्ञानिक और तकनीकी जनशक्ति भारत में है। आज भारत विज्ञान और प्रौद्योगिकी अनुसंधान के क्षेत्र में अग्रणी देशों में सातवें, मौसम पूर्वानुमान एवं निगरानी के लिए 'प्रत्युष' नामक शक्तिशाली सुपरकंप्यूटर बनाकर चौथे, नैनो तकनीक संबंधी शोधों में तीसरे और वैश्विक नवाचार सूचकांक में 46वें स्थान पर है। देश की इन सभी वैज्ञानिक प्रगतियों और उन्नतियों की जानकारियाँ हिंदी में सरल और पठनीय रूप में आमजनों तक पहुँच पा रही हैं।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि हिंदी में उपलब्ध विज्ञान लेखन सामग्री के कारण भारतीय समाज अशिक्षा, अज्ञानता और आडंबरवाद जैसी सोचों के कारण शताब्दियों से चली आ रही कई कुरीतियों, रूढ़ियों, अंधविश्वासों और पाखंडों को छोड़ सका है। हिंदी विज्ञान लेखकों की लेखनी ने पाठकों को तर्कसम्मत ढंग से सोचने की दृष्टि और विवेक प्रदान करने के प्रयास किए हैं, जिससे लोगों में आत्मविश्वास विकसित हुआ है और वे जीवन की चुनौतियों का सामना विवेकपूर्ण ढंग से कर पाने के योग्य बन पा रहे हैं। लोकप्रिय विज्ञान लेखन के साथ-साथ वर्तमान में आवश्यकता इस बात की भी है कि एक उच्चस्तरीय, शोधपरक, मौलिक तथा विशुद्ध विज्ञान विषयों को समर्पित आलेख, शोधपत्र व पुस्तकें भी हिंदी में लिखी जानी चाहिए। ऐसा करने से विज्ञान के विभिन्न विषयों में उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे भारतीय विद्यार्थीगण, शोधार्थी तथा विभिन्न वैज्ञानिक संस्थानों के संबंधित विशेषज्ञ व वैज्ञानिक भी विशेषरूप से लाभान्वित हो सकेंगे।

मालवा-निमाड़ का आनुष्ठानिक पर्व : संजा

'उत्तुंग हिमालय शिखर पर, चरणों में सागर जिसके', ऐसे भारतवर्ष को संपूर्ण विश्व में त्योहारों एवं लोक पर्वों के लिए जाना जाता है। यहाँ का कोई प्रदेश ऐसा नहीं जहाँ लोक पर्व न मनाए जाते हों। जिस प्रकार राजस्थान में 'गणगौर', असम में 'बिहू', हरियाणा में 'गुग्गानोमी', गुजरात में 'नवरात्र' और बिहार में 'छठ पूजा' जैसे लोकपर्वों का प्रचलन है, उसी प्रकार भारत के हृदय स्थल मध्य प्रदेश के मालवा-निमाड़ अंचल में मनाया जाने वाला लोक पर्व है—'संजा'।

संजा पर्व मालवा-निमाड़ अंचल की सांस्कृतिक परंपरा को पुष्ट करने वाला लोक पर्व है जो अश्विन मास (क्वांर महीना) में 16 दिवस तक चलने वाले श्राद्ध पक्ष में मनाया जाता है। कुँवारी कन्याएँ 16 दिवस तक गाय के गोबर से घर के मुख्य द्वार की दीवार पर संजा बाई का भित्ति चित्र उकेरती हैं। इसके लिए बड़े परिश्रम से गाय का ताजा गोबर कुँवारी कन्याओं द्वारा एकत्र किया जाता है, तत्पश्चात उससे संजा का भित्ति चित्र जिसमें मुख्य रूप से भौंह, आँख, नाक, होंठ, सूरज, चाँद, ध्रुव तारा आदि की आकृतियाँ आधारभूत रूप में बनाकर प्रतिदिन तिथि अनुसार आकृति बनाकर गुलदावरी, कनेर, चंपा आदि के फूलों की पत्तियों से सजाया जाता है। 16 दिवस की 16 आकृतियाँ निर्धारित हैं जो इस प्रकार हैं—प्रथम दिन (पूनम)—पाटला अर्थात पटिए की आकृति, द्वितीय दिन (पड़वा)—हाथ से झलने वाले पंखा, तीसरा दिन (दूज)—बिजौरा, चौथा दिन (तीज)—घेवर (एक प्रकार की मिठाई), पाँचवाँ दिन (चतुर्थी)—चौपड़/चौसर, छठा दिन (पंचमी)—पाँच कुँवारे-कुँवारी, सातवाँ दिन (छठ)—बिलौनी और छाबड़ी, आठवाँ दिन (सप्तमी)—स्वास्तिक, नौवाँ दिन (अष्टमी)—आठ पंखुड़ी का फूल, दसवाँ दिन (नवमी)—डोकरा-डोकरी (बुजुर्ग), 11वाँ दिन (दशमी)—दीपक, सीढ़ी या निसरनी, 12वाँ दिन (ग्यारस)—केले का पेड़ और मोर, 13वाँ दिन (बारस)—बंदनवार, 14वाँ दिन (तेरस)—बैलगाड़ी, पंद्रहवाँ दिन (चौदस)—किलाकोट बनाना आरंभ, 16वाँ दिन (अमावस)—किलाकोट का समापन।

तिथि अनुसार आकृतियों का निर्माण मालवा-निमाड़ अंचल की समृद्ध लोक परंपरा और रीति-रिवाजों को उल्लेखित करता है जैसे प्रथम दिन पाटले की आकृति इसलिए बनाई जाती है कि संजा बाई को एक अतिथि के रूप में उच्च आसन पर विराजित किया जा सके जो हमारी 'अतिथि देवो भवः' की परंपरा को भी पुष्ट करता है, अतिथि के आने पर उसके आराम का ध्यान रखा जाता है, इस बात को ध्यान में रखते हुए द्वितीय दिवस पंखे की आकृति बनाई जाती है। स्वास्तिक जहाँ शुभता का प्रतीक है, वहीं घेवर जैसी मिठाई, बंदनवार की आकृति उल्लास का प्रतीक है। यह माना जाता है कि संजा बाई मालवा-निमाड़ की बेटी है जो एक दिन ब्याहकर ससुराल चली जाएगी। इसलिए मायके में उनकी सुख-सुविधा का पूरा ध्यान रखा जाए। किलाकोट में संजा बाई के ब्याह एवं बारात, डोली, हाथी, घोड़ा, नाई, ढोली, गब्दूघोषण आदि सभी की आकृतियाँ बनाई जाती हैं जिनके बनाने का कार्य दो दिवस तक चलता रहता है।

हेमलता शर्मा 'भोली बेन'

जन्म : 19 दिसंबर, 1977

शिक्षा : स्नातकोत्तर

संप्रति : सहायक संचालक कोष एवं लेखा, इंदौर में द्वितीय श्रेणी की राजपत्रित अधिकारी।

प्रकाशन : लगभग आधा दर्जन पुस्तकें प्रकाशित।

सम्मान : राष्ट्रीय सुरभि साहित्य संस्कृति अकादमी खंडवा द्वारा उत्कृष्ट कवयित्री सम्मान, अखिल भारती अग्निशिखा मंच, मुंबई द्वारा साहित्य गौरव सम्मान, मध्य प्रदेश राज्य आनंद संस्थान भोपाल द्वारा पर्यावरण मित्र जैसे कई सम्मान प्राप्त।

संपर्क :
hemlatasharmabholiben@gmail.com

प्रतिदिन कन्याएँ इकट्ठे होकर संजा बाई की आरती उतारती हैं—

पेली आरती रई रमजोर,
काका बाबा की गलियों में,
फूल बिखेरूं कलियों में,
सिंघासन मेलूं दाता में,
तम लो संजा बाई आरती।

छिपाकर प्रसाद का भोग

'संजा जीम लें, चूठ लें, चुड़लो चमकय लें, चूड़ा उपर चांदनी, चांदनी ऊपर मोर, मोर नाचे दो घड़ी, मैं नाचूं सारी रात, चटक चांदनी-सी रात, फूलां भरी रे परात, एक फूलों घटी ग्यो, संजा बाई रूसी गी'—भोजन गीत गाते हुए भोग लगाती हैं और फिर कटोरी में प्रसाद को बजा-बजाकर अपनी सहेलियों से प्रसाद का नाम बूझने को कहती हैं या फिर प्रसाद को सुँघाकर, खट्टा है, मीठा है, चरका (तीखा) है या फीका है, इस प्रकार से पूछा जाता है और फिर संजा के गीत गाए जाते हैं। 'संजाबई का लाड़ाजी', 'लुगड़ो लाया जाड़ा जी', 'म्हारा आंगन में केल उगी', 'काजल टीकी लो बई काजल टीकी लो', 'काजल टीकी लई ने म्हारी संजा बई ने दो', 'नानी-सी गाड़ी लुढ़कती जाय', 'जिमे बैठी संजा बई से लेकर संजा तू थारा घरे जा' आदि गीतों के माध्यम से 16 दिन तक यह मनोरंजक क्रम चलता है। उस समय यही मनोरंजन का साधन भी हुआ करता था।

"संजा बाई के विभिन्न नाम संजा, साँजी, सइया और साँझी आदि प्रचलित हैं जो शुद्ध रूप में 'संध्या' शब्द के देवता हैं इसलिए संजा पर्व सायंकाल में मनाया जाता है। अमावस्या को बहते जल में संजा की आकृति को विसर्जित किया जाता है। इसके पीछे यह मान्यता है कि गोबर के पोषक तत्व जल में मिलकर मिट्टी को और अधिक उर्वर बना देंगे।"

इसके पीछे अवधारणात्मक आयाम यह है कि प्रकृति का संरक्षण और गोधन का संवर्धन हो सके। इस लोकपर्व का वैज्ञानिक कारण भी है। वर्षा काल के पश्चात घरों में सीलन आदि हो जाती थी जिससे मच्छर, बैक्टीरिया आदि पनपने का डर हुआ करता था तो संजा पर्व के लिए घर की लिपाई-पुताई गोबर से करके गोमूत्र का छिड़काव किया जाता था जिससे घर की शुद्धता और पवित्रता बनी रहे। मुख्य द्वार पर संजा मांडी जाती है और उनकी सुगंधित अगरबत्ती, कपूर आदि से आरती की जाती है, जिससे घर के बाहर मुख्य द्वार से ही शुद्धिकरण हो जाता है और घर का संपूर्ण वातावरण निरोगी बना रहता है। फूलों की महक से मनभावन एवं उल्लासपूर्ण वातावरण का निर्माण होता है जो वर्षा ऋतु में उपजी शिथिलता से मुक्त करता है।

न केवल वैज्ञानिक, बल्कि सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टि से भी यह पर्व महत्व रखता है। कम उम्र की बालिकाओं को संस्कार, रिश्तों के प्रति भाव, उनको निभाने का दायित्व बोध, जीवन जीने का तौर-तरीका, सलीका आदि खेल-खेल में ही सिखा दिया जाता है। इस प्रकार यह लोक पर्व सीधे-सीधे हमें पर्यावरण व अपने परिवेश से जोड़ता है।

संजा पर्व की उत्पत्ति के संबंध में विभिन्न मान्यताएँ प्रचलित हैं, जैसे—एक मान्यता के अनुसार, यह पर्व माता पार्वती के प्रतिरूप संजा बाई से अच्छे घर-वर की कामना से किया जाता है। कहा जाता है कि माता पार्वती ने खेल-खेल में भगवान शिव को पाने के लिए संजा बनाकर प्रसन्न किया था। एक अन्य मान्यता के अनुसार, राधा रानी भगवान श्री कृष्ण को रिझाने और उन्हें परमेश्वर के रूप में मानकर उनका प्रेम पाने की कामना से बालपन में ही अपने पिता वृषभानु जी के आंगन में संध्या देवी की आकृति बनाकर अपनी सखियों के साथ पूजन किया करती थीं, क्योंकि कृष्ण भगवान को गाय से अति प्रेम था इसलिए गाय के गोबर से संजा बाई की आकृति बनाई जाती है। एक अन्य शास्त्रोक्त मान्यता के अनुसार, संजा को धरती माता की पुत्री के रूप में माना जाता है और ब्रह्मा जी की मानसी कन्या संध्या को भी संजा के रूप में पूजा जाता है।

संजा बाई के विभिन्न नाम संजा, साँजी, सइया और साँझी आदि प्रचलित हैं जो शुद्ध रूप में 'संध्या' शब्द के देवता हैं इसलिए संजा पर्व सायंकाल में मनाया जाता है। अमावस्या को बहते जल में संजा की आकृति को विसर्जित किया जाता है। इसके पीछे यह मान्यता है कि गोबर के पोषक तत्व जल में मिलकर मिट्टी को और अधिक उर्वर बना देंगे।

संजा पर्व किंचित हेर-फेर के साथ राजस्थान, पंजाब, उत्तर प्रदेश, गुजरात एवं महाराष्ट्र आदि प्रदेशों में भी मनाया जाता है। मालवा-निमाड़ की लोक परंपरा के रूप में यह लोक पर्व विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में मनाया जाता है और संजा पर्व कन्याओं के विवाह उपरांत भी यादों में हमेशा के लिए तरोताजा बना रहता है और यही यादें उनके व्यवहार में प्रेम, एकता और सामंजस्य का सृजन करती हैं। यह पर्व उनके व्यक्तित्व निर्माण में अनूठी भूमिका निभाता है। साथ ही पर्यावरण संरक्षण का संदेश भी देता है, किंतु वर्तमान में यह लोक पर्व विलुप्ति के कगार पर है। आजकल संजा का रूप फूल-पत्तियों से कागज में तब्दील होता जा रहा है। साथ ही, गोबर का अभाव, टीवी, इंटरनेट, मोबाइल आदि का प्रभाव और बोझिल पढ़ाई के कारण शहरों में संजा मनाने का चलन खत्म-सा हो गया है जिसका संरक्षण अति आवश्यक है। बच्चों को संस्कार और रीति-रिवाजों, लोक परंपराओं का ज्ञान कराना अति आवश्यक है। कहीं आधुनिकता के चक्कर में हमारी लोक परंपराएँ शनैः-शनैः समाप्त न हो जाएँ। इसलिए समय रहते इसकी जानकारी नवीन पीढ़ी को प्रदान करते हुए उनको इसे मनाने हेतु जागरूक करना आज की महती आवश्यकता है।

आओ भारतीय भाषाएँ सीखें

हिंदी	संस्कृत	पंजाबी	उर्दू	कश्मीरी	सिंधी	मराठी	कोंकणी	गुजराती	नेपाली	बांग्ला
रसोईघर की वस्तुएँ	**पाकशाला-वस्तूनि**	**रसोई घर दा सामान**	**बावर्ची खाने की चीजें**	**चोकक्य-चीज़**	**रंधिणे जूं शयूं**	**स्वयंपाक घरातील सामान**	**रांदची कूडूयेचो सामान**	**रसोडानो सामान**	**भान्छाघरका मालसामान**	**रान्नाघरेर सरोन्जाम**
अँगीठी	हसन्ती अङ्गारधानी	अंगीठी चुल्हा	अंगीठी	दमचूल, अंगीडी	सिगिरी अंगीठी	शेगडी	शेगडी	सगडी	अँगेठी बोर्सी	काठ कयलादिर तोलाउनुन (स्थानांतर जोग्यो)
कलछी	वलनी	कड़छी	करछी	क्रॅछ़-चोंचि	केवी, कड़िछी	पळी	पळी, दवली	कडछी	पनिउँ, पन्यूँ	हाता
गागर	गर्गरः	गागर	गगरा गागर	गागर	घाघरि, मोर्यो	घागर	कळशी कळसो	गागर	गाग्रो	बड़ो घड़ा, गागर
घड़ा	घटः	घड़ा, मटका झज्जर	घड़ा	नोट	दिलो	मोठी घागर	घडो, मडकी	घडो	घडा, घैंटो धैला, गाग्रो	घड़ा, कलसि
चम्मच	चमसः	चिमचा चमचा	चमचा	चमचि, काशव	चिम्चो, चमचो	चमचा	चमचो	चमचो	चम्चा, चम्‌च	चामचे/ चामच
चाकू	क्षुरिका, छुरिका	चाकू, काचू, चक्कू	चाकू	श्रापकुच	कपु, चाकूं	चाकू	चाकू	चाकू, चप्पु	चक्कु	छुरि, चाकु
चिमटा	कङ्कमुखः, सन्दशः	चिमटा	चिमटा	चुमट	चिम्टो, चिमिटो	चिमटा	चिमटो	चीपियो	चिम्टा	चिम्टे, चिम्टा
छलनी (चलनी)	तितउ, पावनी	छानणी	छलनी	पर्युन	छाणी	चाळणी	चाळणी	चाळणी	चल्नी, चाल्‌नी	चाल्नी, चालुनि
जग	भृङ्गारः	जग	जग	जग	जगु, सुराही	जग, सुरही	खुजो	जग	जग	जग
तवा	तप्तकम्	तवा	तवा	तॉव	तओ	तवा	तवो	तवो	तावा	चाटु, ताओया
तश्तरी	स्थाली	रकाबी पलेट	तश्तरी	रिकॉब्य	तसिरी, रकाबी, रिकेबी	तबक ताटली	पीर, प्लेट	रकाबी	रिकापी	छोटो रेकाबि
थाली	स्थाली, स्थालम्	थाली	थाली	थाल	थाल्ही, थाल्हु	थाळी ताट	ताट, थाळी	थाली	थाळी	थाला

असमिया	मणिपुरी	ओड़िआ	तेलुगू	तमिल	मलयालम	कन्नड़	डोगरी	संताली	मैथिली	बोड़ो
रांधनी-घरर सरन्जाम	**चाक्खूमगी पोतलाम चाकशङ्गी पोत चै**	**रोषेइ घर जिनिष**	**वंटिंटि वस्तुवुलु**	**समयलऱै सामान्गळ्**	**अटुक्कल सामानङ्ङळ**	**अडिगे मने सामानुगळु**	**रसोई दा समान**	**इसिन अड़ाक् रेनाक् जिनिसपाति**	**भनसाघरक वस्तु**	**ओखाम संग्रानि बेसादफोर**
अङवा आंगठी	मैफू, लैरङ	उठा चुली	पोय्यि, कुंपटि	कुमुट्टि अडुप्पु	करियटुप्पुॅ	अग्गिष्टिके	ङीठी, चुल्ल	कयला चुल्हा	चुलहा, चुल्हि, चुलही	अरखि
हेता करचळि कयला	खाबै	कलसी	गरिटे	करंडि	चट्टकम्	सौटु	कड़छी	कुसनि, खुन्ति	करछु, करछुल	खोस्लि गार्बा
गागरि, कलह	सनाबुल	गरा	बिंदे	तोण्डि/ कुडम्	कलम्/ कुडम्	बिंदिगे, गडिगे	गागर	बाहनि	घैल	गाहरा
घट, कलह	चफू, तन तक फाम मपाक	घड़ा, कलसी	कुंडॖ, कडवॖ	पानै	कुटम्	कोड	घड़ा	हांढा	घइल	दैहु, गाहरा
चामुच	चमोच	चामच	चमचा	स्पून/ तेक्करण्डि	स्पूणॅु, करंटि	चमच	चिमचा	चामचा	चम्मच	सामुस
कटारी छुरी	थाङ्, हैज्राङ्	छुरि	चाकु	पेनाक्कत्ति	पिच्चात्ति पेनाक्कत्ति	चाकू	चाकू	छुरि, चाकू	चक्कू, छुरी	दाबा, दाबा सुरि, सुरफि
चेपेना, चिम्टा	मैरौ चेगप	चिमुटा	पटकारु	चिमटा/ इडुक्कि	कोटिल्	इक्कळ	चिमटा, उच्चा	चिम्टा	चुट्टा, चिमटा	खेबग्रा
चालनी	चालोनी, चाजूम	चालुणी	ज़ल्लेड	चल्लडै	अरिप्प	जरडे	छाननी	चाला	चालैन	सान्द्रि
जग	जग	जग्	जग्गु	जग्	जग्ग्	हूजि	जग्ग	जाग, जग	जग	जग
तावा	तवा	ताऊआ, तावा	पेनुम	तोसैक्कल्	दोशक्कलल्युॅ	कावलि	तवा	तावा	तब	थावा, सराइ फोस्लां
सरु, काँही	शेम्पाक, प्लेट	थालिआ	प्लेटु	तांबाळम्/ तट्टु	तट्टम् प्लेटट्टुॅ	प्लेटु	पलेट, तश्तरी	रकाबि (एटि जाहाँ रेको दहया) टुकुज् (दाकाय लागिद्)	तश्तरी	फिसा थोरसि
थाल, कॉही	पुखम	थाली	पळ्ळेमु कंचुम	तट्टु	तलिक	तट्टे	थाली	थारि	थारी	थोरसि, थुरसि

(केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा प्रकाशित भारतीय भाषा कोश से साभार)

विदेश में हिंदी

वस्तुतः भाषा स्वयं में ही मुखरित संस्कृति है, जो अंतर्निहित संस्कृति के अव्यक्त रूप को व्यक्त करती है और समाज में अधिष्ठित होती हुई संस्कृति को जीवंत भी रखती है। युगों-युगों की सभ्यता और संस्कृति को संचित और संचरित करती हुई आगामी पीढ़ी तक भाषा ही तो ले जाती है। वस्तुतः हिंदी भाषा नहीं, एक संस्कृति है जिसमें एक-एक अक्षर में ज्ञान, विज्ञान, अध्यात्म और यौगिक तत्वों का समावेश है। श्रीकृष्ण गीता में उद्घोष करते हैं—"अक्षराणां अकारोस्मि"। अक्षरों में मैं अकार हूँ और अकार अक्षरों का प्राण है। इसलिए हिंदी को 'देव भाषा' कहा जाता है जो संस्कृत से निःसृत है।

भाषा की गूढ़ गर्भिता

वस्तुतः भाषा के अंदर सभ्यता, संस्कृति और संस्कार तीनों के बीज समाहित रहते हैं। आज के तकनीकी प्रधान युग में विश्व सिमट कर जैसे हथेली पर आ गया है, दूरियाँ मिट गई हैं। विश्व के लोग शिक्षा, व्यवसाय, नौकरी अथवा अन्य कारणों से एक-दूसरे देशों में प्रवास करते हैं। स्वाभाविक है कि प्रवासी अपनी भाषा के साथ अपनी सभ्यता, संस्कृति और संस्कार को प्राथमिकता देते हैं। साथ ही, उस देश की भाषा का प्रभाव और ज्ञान लेते भी हैं। हिंदीभाषी समुदाय अपनी संस्कृति को रीति-रिवाजों को त्योहारों के माध्यम से व्यक्त करते हैं और उनकी प्रयुक्त भाषा भी संक्रमित करती है, जैसे—नमस्ते करना और कहना, योग के अनंतर ॐ! का उच्चारण आदि।

डॉ. मृदुल कीर्ति

भारतीय ऋषिजन्य सांस्कृतिक आर्ष ग्रंथों के, मूल संस्कृत से, हिंदी भाषा में विभिन्न छंदों में सरल, सरस काव्यानुवाद। आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक और ऋषियों का उद्बोधन और आह्वान 'आओ लौट चलें शाश्वती की ओर'। वेद, नौ उपनिषदों, सांख्ययोग दर्शन, पतंजलि योग दर्शन, श्रीमद्भगवद्गीता, अष्टावक्र गीता, अथर्ववेद का प्राण सूक्त, शंकराचार्य स्तुति स्तोत्र साहित्य, विवेक चूड़ामणि आदि का काव्यामृत।

संपर्क : ईमेल— mridulkirti@gmail.com

विदेशों में हिंदी पाठ्यक्रम

विदेशों में हिंदी के संदर्भ के तथ्य उत्साहवर्धक हैं। अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, सिंगापुर, मॉरीशस, फिजी, कनाडा, सूरीनाम आदि देशों में बहुत अधिक संख्या में भारतीय प्रवासी हैं। इन देशों में हिंदी की स्थिति हिंदीभाषी प्रवासियों के कारण स्वाभाविक रूप से दृढ़ हो रही है। जब प्रवासियों का संख्या का अनुपात अधिक होता है तो भाषा का प्रभाव अधिक प्रभावी होकर द्वितीय भाषा के रूप में शिक्षा संस्थानों में स्थान मिलने लगता है। अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया और फिजी में द्वितीय वैकल्पिक भाषा के रूप में कक्षा एक से लेकर 12वीं तक हिंदी पढ़ने की व्यवस्था है। दूरस्थ 11-12वीं की भी व्यवस्था है।

विक्टोरियन स्कूल ऑफ लैंग्वेजेज https://www.vsl.vic.edu.au/ के लिंक पर आप क्लिक करें तो सुखद अनुभूति होगी। हिंदी को कितनी प्रभावी रूप में पढ़ाया जाता है और इनकी पाठ्यपुस्तकों का लेखन और प्रकाशन कितना प्रभावी है। 'हिंदी नक्षत्र' जैसे प्रभावी शीर्षक हिंदी के प्रति गहरी रुचि के

परिचायक हैं। 'हिंदी निकेतन' नाम की संस्था तो अप्रतिम काम कर रही है, इनके वार्षिक आयोजन और हिंदी के लिए विद्यार्थियों का पुरस्कार वितरण भव्य होता है। अमेरिका में द्वितीय भाषा के रूप में इसी तरह हिंदी के प्रावधान हैं। अमेरिका से तो कई पत्रिकाएँ हिंदी भाषा में प्रकाशित होती हैं।

"न्यूयॉर्क से 'योग' शीर्षक से ही योग पत्रिका निकलती है। एक और सबल पक्ष है कि जब रविवार को मंदिरों में हिंदी पढ़ाई जाती है। हिंदी प्रेमी यहाँ अपनी सेवाएँ निःशुल्क देते हैं। यहाँ बड़ी संख्या में बच्चे हिंदी सीखते हैं। इसके साथ ही प्रमुख मंत्रों, जैसे—'गायत्री मंत्र', 'त्वमेव माता च पिता त्वमेव', 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' आदि को भी सीखते हैं। वैदिक गुरुकुल हैं जहाँ वेद मंत्रों से साप्ताहिक यज्ञ होते हैं। बच्चों को हिंदी के साथ संस्कृत भी सिखाई जाती है।"

'योग' का हिंदी के प्रचार-प्रसार में अद्‌भुत योगदान

योग के स्वास्थ्यवर्धक आकर्षण, आध्यात्मिक उत्कर्ष की उत्कट चाह और आत्मिक संतोष के सन्निहित गुणों ने तो हिंदी को विश्वव्यापी बना दिया है। योग का शंखनाद जैसे कह रहा हो, 'आओ लौट चलें सनातन युग की ओर, ऋषियों के उद्‌बोधन के आत्मज्ञान की ओर'। योग धर्म आज विश्वधर्म बनता जा रहा है और विशेष तथ्य है कि

अंग्रेजों द्वारा भी योग और ध्यान में प्रयुक्त योगासनों को संस्कृत अथवा संस्कृतनिष्ठ हिंदी के तत्सम रूप में ही बोला जाता है, क्योंकि ऋषिजन्य ज्ञान के उद्‌बोधन के पर्यायवाची नहीं हुआ करते, यह हिंदी और संस्कृत के उत्कृष्ट स्वरूप का साक्ष्य है, जैसे—सेतुबंध आसन को ब्रिज नहीं, त्रिकोण आसन को ट्रायंगल नहीं। नमस्ते, ॐ! का उच्चारण, सूर्य नमस्कार आदि भारतीय संस्कृति और भाषा के बीज बोने के समान है। न्यूयॉर्क से 'योग' शीर्षक से ही योग पत्रिका निकलती है। एक और सबल पक्ष है कि जब रविवार को मंदिरों में हिंदी पढ़ाई जाती है। हिंदी प्रेमी यहाँ अपनी सेवाएँ निःशुल्क देते हैं। यहाँ बड़ी संख्या में बच्चे हिंदी सीखते हैं। इसके साथ ही प्रमुख मंत्रों, जैसे—'गायत्री मंत्र', 'त्वमेव माता च पिता त्वमेव', 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' आदि को भी सीखते हैं। वैदिक गुरुकुल हैं जहाँ वेद मंत्रों से साप्ताहिक यज्ञ होते हैं। बच्चों को हिंदी के साथ संस्कृत भी सिखाई जाती है। वैदिक संस्कृति को पूरे मनोयोग से गुरुकुल में शिक्षित किया जाता है।

तकनीकी युग का प्रभाव

संस्कृत, हिंदी और योग यद्यपि भारत की सनातन युगीन संस्कृति है, किंतु इसे विश्वव्यापी आकर्षण देने में तकनीकी सहयोग का योगदान अद्‌भुत और विस्मयकारी है। सच कहा जाए तो एक तरह से यह अभूतपूर्व योगदान है। आज के वैज्ञानिक युग में कंप्यूटर से भाषा का प्रचार-प्रसार और प्रभाव बढ़ता ही जा रहा है। अनुवाद की सुविधा ने तो सारी दूरियाँ ही मिटा दी हैं। किसी भी भाषा का हिंदी रूपांतरण सहज और सुलभ हो गया है। जूम के माध्यम से भी भाषाओं के आदान-प्रदान के सुखद संयोग बने हैं। हिंदी बोल-चाल से, प्रवास से नई तकनीक से निरंतर आगे बढ़ रही है। 19वीं सदी फ्रेंच की थी, 20वीं अंग्रेजी की और 21वीं सदी हिंदी की है। आज हिंदी राजभाषा, संपर्क भाषा, जनभाषा के सोपानों को पार कर विश्व भाषा की ओर अग्रसर है।

विज्ञान का प्रथम शोध-प्रबंध हिंदी में

बात लगभग 50 वर्ष पुरानी है। अंग्रेजी का विरोध और हिंदी में सारे काम-काज की संभावनाएँ तलाशी जा रही थीं। इंदौर शहर में थोड़ी अधिक ही सक्रियता थी। वर्तमान के वरिष्ठ पत्रकार वेद प्रकाश 'वैदिक' के नेतृत्व में 'अंग्रेजी हटाओ' का नारा गूँज रहा था। युवा सभी दुकानों के बोर्ड जो अंग्रेजी में लिखे थे, उन्हें काले रंग से पोत रहे थे। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली में अध्ययन का माध्यम केवल अंग्रेजी था, किंतु उसमें अध्ययनरत वैदिक ने अपनी परीक्षा हिंदी में दी थी और संसद में बड़े हंगामे के साथ उसे स्वीकृति दी गई थी।

उस समय महाविद्यालयों में अध्यापन का माध्यम अंग्रेजी ही था। विशेष तौर पर विज्ञान की पढ़ाई तो अंग्रेजी में ही हो सकती है, यह धारणा प्रबल थी। तथापि हिंदीभाषी प्रांतों के अधिकांश विद्यार्थी अंग्रेजी में अध्ययन करने में बहुत कठिनाई अनुभव करते थे। यही कारण है कि महाविद्यालय में प्रथम वर्ष में 20 प्रतिशत से अधिक विद्यार्थी उत्तीर्ण ही नहीं हो पाते थे और 'फर्स्ट इयर', 'रेस्ट इयर' कहा जाता था। मैंने महाविद्यालय में अध्यापन सन् 1968 से प्रारंभ किया था और इन सात-आठ वर्षों में मैंने अनुभव किया था कि विद्यार्थियों के साथ जितना संभव हो सके, हिंदी में संप्रेषण उनकी समझ को बढ़ाता और पुख्ता करता है। केवल अंग्रेजी में अध्यापन न करके खिचड़ी भाषा जिसे 'हिंग्लिश' कहा जा सकता है, में भी पढ़ाई विद्यार्थियों को तनावमुक्त कर देती है। यह मेरा महाविद्यालय में अध्यापन के क्षेत्र का व्यक्तिगत अनुभव था। यह वह समय था जब अंग्रेजी माध्यम के स्कूल केवल बड़े शहरों में ही थे और उनके ऊँचे शिक्षण शुल्क के कारण ऐसे स्कूल अधिकांश विद्यार्थियों की पहुँच के बाहर थे। शासकीय विद्यालयों में पढ़ना ही बहुत आम बात थी और वहाँ पढ़ाई का माध्यम हिंदी ही था, किंतु विज्ञान के शिक्षक तो हिंदी में पढ़ाने में दिक्कत अनुभव करते थे क्योंकि वे स्वयं भी अंग्रेजी माध्यम में पढ़े होते थे। हिंदी में लिखी किताबें, विज्ञान के विषयों में तो उपलब्ध ही नहीं थी। इससे मुझे हिंदी में विज्ञान को लिखने की महत्ता का गहराई से एहसास हुआ।

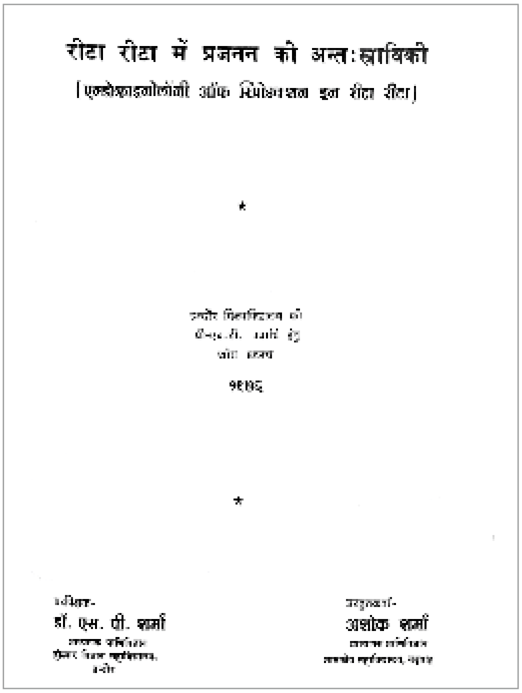
रीटा रीटा में प्रजनन की अन्त:स्त्राविकी

डॉ. एस. पी. शर्मा

अशोक शर्मा

इस परिदृश्य में मैंने अपना प्राणिविज्ञान में शोधकार्य प्रारंभ किया। मुझे लगता था कि हिंदी का अच्छा ज्ञान हो तो विज्ञान को हिंदी में लिखा और पढ़ाया जा सकता है। यह बात मन में दृढ़ होती गई और मैंने अपने शोध के निष्कर्षों को अंग्रेजी के अतिरिक्त हिंदी में भी लिखना प्रारंभ कर दिया। एक नामी-गिरामी प्राध्यापक के मार्गदर्शन में मैंने विश्वविद्यालय में पी-एच.डी. के लिए पंजीयन के लिए आवेदन किया, किंतु हिंदी में शोध प्रबंध की बात उन्होंने स्वीकार नहीं की। फिर दूसरे कनिष्ट और युवा मार्गदर्शक ने इस चुनौतीपूर्ण कार्य करने में मेरी हौसला-अफजाई की। 1975 में शोध प्रबंध

डॉ. अशोक शर्मा

मध्य प्रदेश के उच्च शिक्षा विभाग के अंतर्गत शासकीय महाविद्यालय के सेवानिवृत्त प्राचार्य। हिंदी में प्राणिविज्ञान लेखन और फिल्मांकन में संलग्न। उच्च शिक्षा में 51 वर्षों के दीर्घ सेवाकाल में अध्यापन और कई प्रशासकीय पदों पर कार्यरत रहे। उनके मार्गदर्शन में अनेक विद्यार्थियों ने पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। कई शोध-पत्र राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय शोध-पत्रिकाओं में प्रकाशित।

संपर्क : मोबाइल– 9425320306

ईमेल– drashoksharma6@gmail.com

पूरा हुआ। बहुत कठिनाइयाँ आईं। हिंदी में तकनीकी शब्दों की उपलब्धता न होने पर नए तकनीकी शब्दों का निर्माण किया जो मुख्य चुनौती थी। यदि यह कार्य अंग्रेजी में किया जाता तो बहुत कम मेहनत में शीघ्र ही संपन्न होता, क्योंकि संदर्भ ग्रंथ अंग्रेजी में सरलता से उपलब्ध थे। मेरे प्राध्यापक मार्गदर्शक का उच्च स्तरीय हिंदी ज्ञान

“अपनी स्वयं की भाषा में अध्ययन और वैज्ञानिक अनुसंधान से ही मौलिकता आती है। वे सारे विकसित देश जहाँ अंग्रेजी नहीं बोली जाती, अपनी-अपनी भाषा में ही अनुसंधान कर रहे हैं। रूस, चीन, जापान, इटली, फ्रांस और अनेक एशियाई और यूरोपीय देश इसके ज्वलंत उदाहरण हैं, जिन्होंने विज्ञान में उच्च स्तरीय शोध किए हैं और अनेक तकनीकों का वहीं से प्रादुर्भाव हुआ है। यही कारण है कि विज्ञान के साहित्य में इन देशों के तकनीकी शब्दों की भरमार है, जिन्हें अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सभी देशों ने मान्य किया है।”

नए पारिभाषिक शब्दों को गढ़ने में मददगार सिद्ध हुआ, पर उनकी एक बड़ी शर्त थी, जो मुझे माननी पड़ी। उनका आग्रह था कि इस शोधकार्य को किसी मान्य अंतरराष्ट्रीय शोध-पत्र में अंग्रेजी में

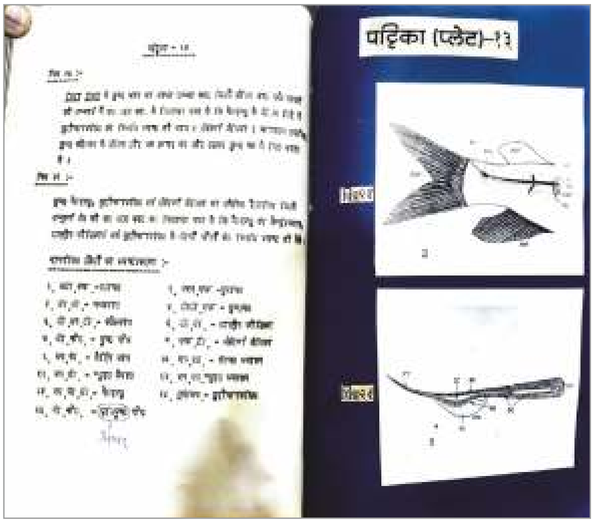

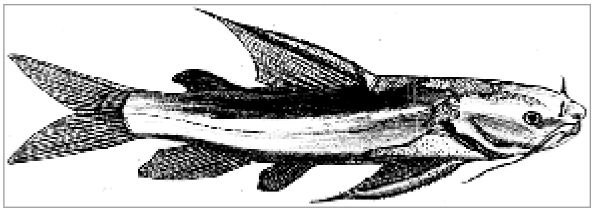

प्रकाशित करने के बाद ही इसे विश्वविद्यालय में प्रस्तुत किया जाए। यह शर्त शोध-कार्य के उच्च स्तर का प्रमाणीकरण था। वक्त तो लगा, किंतु कनाडा के 'केनेडियन जनरल ऑफ जूलॉजी' में अधिकांश शोध-कार्य अंग्रेजी में प्रकाशित हुआ और मेरा हिंदी में लिखा प्रथम शोध प्रबंध देवी अहिल्या विश्वविद्यालय इंदौर को प्रस्तुत किया गया।

शोध प्रबंध प्रस्तुत किए एक वर्ष से अधिक हो गया, किंतु परीक्षकों की रिपोर्ट नहीं आई। दिल्ली विश्वविद्यालय के किसी दक्षिण भारतीय विषय विशेषज्ञ के पास मेरा शोध प्रबंध परीक्षण के लिए गया था, जो उन्होंने बिना जाँचे लगभग एक वर्ष के बाद इंदौर विश्वविद्यालय को लौटा दिया। तत्पश्चात बनारस विश्वविद्यालय के तत्कालीन प्राणिशास्त्र के विभागाध्यक्ष, विशेषज्ञ

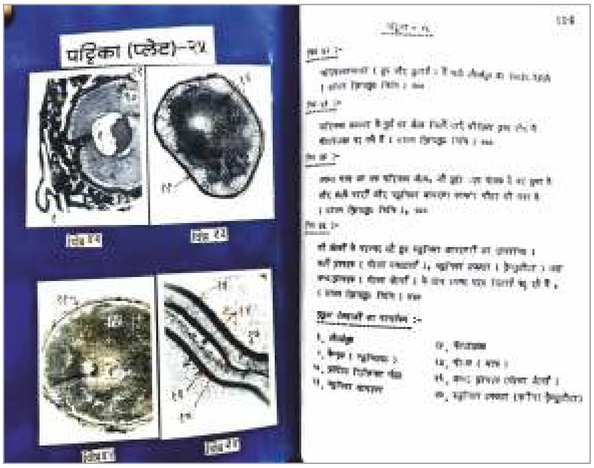

ने इस हिंदी में लिखे शोध प्रबंध का परीक्षण करना स्वीकार किया और इस प्रकार इस कार्य की पूर्णाहुति हुई। समाचार पत्रों में इसे पर्याप्त स्थान भी मिला।

इस पूरे वाकिये से मेरे मन में यह बात दृढ़ता से पैठ कर गई कि हिंदी में विज्ञान संभव है और इसकी बड़ी महत्ता है। अपनी स्वयं की भाषा में अध्ययन और वैज्ञानिक अनुसंधान से ही मौलिकता आती है। वे सारे विकसित देश जहाँ अंग्रेजी नहीं बोली जाती, अपनी-अपनी भाषा में ही अनुसंधान कर रहे हैं। रूस, चीन, जापान, इटली, फ्रांस और अनेक एशियाई और यूरोपीय देश इसके ज्वलंत उदाहरण हैं, जिन्होंने विज्ञान में उच्च स्तरीय शोध किए हैं और अनेक तकनीकों का वहीं से प्रादुर्भाव हुआ है। यही कारण है कि विज्ञान के साहित्य में इन देशों के तकनीकी शब्दों की भरमार है, जिन्हें अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सभी देशों ने मान्य किया है। विदेशी भाषा में केवल हम नकल ही कर पाते हैं। मौलिक अनुसंधान के लिए स्वयं की भाषा में चिंतन का होना अति आवश्यक है।

प्रसन्नता की बात है कि अब मेडिकल और इंजीनियरिंग की पढ़ाई भी हिंदी में की जा सके, इसके प्रयत्न राष्ट्रीय स्तर पर हो रहे हैं। इससे हिंदीभाषी प्रदेशों के विद्यार्थियों की कठिनाई दूर होगी और उनकी समझ में गहराई आने से विषय में मौलिक चिंतन और उच्च स्तरीय अनुसंधान का मार्ग प्रशस्त होगा।

एक लीजिए-एक दीजिए
अमेरिका के लघु पुस्तकालय

पुस्तकें मानव की सच्ची मित्र होती हैं और इन्हें पढ़ने की इच्छा भी हर व्यक्ति में होती है। पुस्तकों के पठन-पाठन से ज्ञान का संचार तो होता ही है, साथ ही व्यक्तिगत गुणों का विकास भी होता है। वास्तव में व्यक्ति के बहुमुखी विकास में पुस्तकें विशेष भूमिका निभाती हैं। जैसे समाज में हर प्राणी के रहने के लिए एक घर की आवश्यकता होती है, ठीक वैसे ही पुस्तकों के रख-रखाव, सुरक्षा और उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए पुस्तकालय की आवश्यकता होती है। विद्यालयों, सरकारी संस्थाओं एवं नगरों में इनकी स्थापना हर प्रगतिशील देश की आवश्यकता है।

शशि पाधा

जन्म : जम्मू

शिक्षा : एम.ए. (संस्कृत), एम.ए. (हिंदी), बी.एड.।

संप्रति : लगभग 25 वर्ष तक भारत एवं अमेरिका में अध्यापन का कार्य किया।

प्रकाशन : पाँच काव्य संग्रह, शौर्य गाथा (संस्मरण-संग्रह), निर्भीक योद्धाओं की कहानियाँ (कहानी-संग्रह), यादों की अनुगूँज (आलेख-रेखाचित्र, संस्मरण संग्रह), देश और विदेश में प्रकाशित अनेक साझा संकलनों में इनकी रचनाएँ सम्मिलित की गई हैं। देश-विदेश की अनेक पत्र-पत्रिकाओं में इनकी रचनाएँ प्रकाशित।

सम्मान : केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा राष्ट्रीय पुरस्कार, राष्ट्र भाषा प्रचार समिति जम्मू द्वारा हिंदी भाषा और साहित्य के प्रति सतत योगदान के लिए सम्मानित। अर्पिता फाउंडेशन द्वारा साहित्य एवं शिक्षण के क्षेत्र में 'लाइफ टाइम अचीवमेंट' पुरस्कार।

संपर्क : ईमेल– shashipadha@gmail.com

आपको एक ऐसे पुस्तकालय के विषय में जानकारी दी जा रही है जो अपने आप में एक उदाहरण है। इन्हें न कोई भव्य, आलीशान, वातानुकूलित भवन चाहिए और न ही इनके रख-रखाव के लिए विशालकाय अलमारियाँ। ये नन्हे-मुन्ने ज्ञान के भंडार अपने नन्हे आकार में भी सैकड़ों पुस्तक प्रेमियों को लाभान्वित करते हैं।

अमेरिका में इन्हें 'Little Free Library' यानी 'लघु निःशुल्क पुस्तकालय' के नाम से जाना जाता है। ऐसे लघु पुस्तकालय आपको अमेरिका के शहरों/महानगरों में कई स्थानों पर दिखाई देंगे। अधिकतर ये ऐसे विशेष स्थान पर दिखाई देंगे जहाँ आने-जाने वाली गाड़ियों के मार्ग में अवरोध न आए और उस रास्ते से गुजरने वाले की दृष्टि उन पर आसानी से पड़े। ये सैर करने के लिए बनाई गई पगडंडी के किसी किनारे पर, साइकिल दौड़ में निकले लोगों के मार्ग पर या व्यायाम केंद्रों के पार्किंग लॉट के ठीक सामने आसानी से दिखाई देंगे।

इन पुस्तकालयों का आकार भी बहुत छोटा है। बिलकुल किसी पेड़ के साथ बँधे हुए पँछी के घर की तरह। बस एक दमदार लकड़ी के खंभे के ऊपरी भाग पर एक अलमारी-सी जोड़ दी जाती है जिसमें एक या दो खाने होते हैं। इसके पल्ले शीशे के होते हैं ताकि आते-जाते लोग झाँक कर देख सकें

कि बीच में कौन-सी किताबें हैं। पल्लों पर आसानी से खुलने वाली कुंडी लगी होती है ताकि तेज हवा के चलने से इस अलमारी के पल्ले न खुल जाएँ और इसमें सजी हुई विभिन्न विषयों से संबंधित पुस्तकें/पत्रिकाएँ हर आने-जाने वाले को अपनी ओर आकर्षित करती हैं।

पुस्तकों के इस छोटे से घर के जन्म की कहानी भी बहुत दिलचस्प है। इसका आरंभ एक पुत्र का अपनी माँ के प्रति श्रद्धांजलि के रूप में हुआ था। वर्ष 2009 में विस्कान्सन राज्य के टॉड बोल ने अपनी दिवंगत माँ की स्मृति में अपने घर के बाहर एक खंभे पर एक छोटा-सा स्कूल हॉउस का मॉडल बनाया और उसे किताबों से भर दिया। इनकी माँ एक स्कूल अध्यापिका थीं और उन्हें पढ़ना बहुत पसंद था। इनके दोस्तों, पड़ोसियों और इनकी माँ के शिष्यों ने जब इस नन्हे स्कूल मॉडल को देखा तो उन्होंने भी श्रद्धांजलि के

रूप में ऐसे कई मॉडल बनाए और जगह-जगह पर खंभे के साथ लगा दिए। आने-जाने वाले लोग वहाँ पर उत्सुकतावश रुक जाते और फिर वहीं से किताबों का आदान-प्रदान आरंभ हुआ। कालांतर में इस विनम्र श्रद्धांजलि ने एक अभियान का रूप धारण कर लिया। 'लिटिल फ्री लाइब्रेरी' नाम तो इसे बहुत बाद में दिया गया। वर्ष 2020 तक पूरे विश्व में 1,00,100 नन्हे पुस्तकालय बन गए। महत्वपूर्ण बात यह है कि इसका आकार नहीं बदला गया। इसे हर नए स्थान पर उसी अपने प्रारंभिक रूप में एक छोटे से खंभे पर एक शेल्फ के रूप में ही स्थापित किया गया।

मुझे इस नन्हे पुस्तकालय की दो बातों ने बहुत प्रभावित किया। पहली तो यह कि इसकी ऊँचाई लगभग चार फुट से अधिक नहीं होती। यह शायद इस सोच के साथ रखी होती है कि चार-पाँच वर्ष

का बच्चा आसानी से इसे खोलकर अपने मनपसंद की पुस्तक देख सके। सबसे महत्वपूर्ण एवं प्रेरक बात यह है कि इसके नीचे खंभे पर बड़े-बड़े शब्दों में लिखा होता है—Take One, Share One। यानी एक किताब लीजिए-एक छोड़ जाइए। अगर आप केवल इन चार शब्दों पर ध्यान दें तो ये हरेक प्राणी के लिए प्रेरणादायक भी हैं और परस्पर बाँटने के गुण का बीज अंकुरित करने वाले भी। यह वसुधैव कुटुंबकम का पाठ भी पढ़ाते हैं और हर आयु/वर्ग के प्राणी को पुस्तक पढ़ने के लिए आकर्षित भी करते हैं।

जरा सोचिए! हम सब पुस्तक प्रेमियों के पास इतनी पुस्तकें या पत्र-पत्रिकाएँ होती हैं जिन्हें हम दो-चार बार पढ़कर किसी को देने के लिए तैयार बैठे होते हैं, लेकिन हमें दूसरों की रुचि का पता नहीं होता या हम संकोचवश पुरानी पुस्तक या पत्रिका किसी को देने में झिझकते हैं। ऐसे में सार्वजनिक स्थान पर अपनी पुस्तकें रख देने में हमें कोई संकोच नहीं होता है, अपितु खुशी ही होती है कि आपकी पुस्तक घर की अलमारी में पड़ी नहीं रहेगी। इसे कोई और भी पढ़ेगा। फिर तो सिलसिला कहीं रुक नहीं सकता। किताब जितने लोगों के हाथ जाएगी, उतने लोगों का मनोरंजन भी करेगी और ज्ञानवर्धन भी।

ऐसे नन्हे पुस्तकालय के अनगिनत लाभ भी हैं। आप चलते-फिरते जब भी ऐसी जगह पर पहुँच जाते हैं यहाँ यह सजा खड़ा है, एक बार तो आप उसे खोल के देख ही लेंगे और फिर अगर आपकी रुचि की पुस्तक या पत्रिका वहाँ होगी तो आप उसे अपने साथ घर भी ले आएँगे। इस विचार से कि पढ़ आकर आप इसे वहीं रख देंगे या किसी मित्र को दे देंगे। दूसरा लाभ यह भी होता है कि जैसे ही आप कोई पुस्तक उठाकर ला रहे होते हैं, आपके मन में यह विचार अवश्य आएगा कि मुझे भी ऐसा करना चाहिए। बस यही वे प्रारंभिक बिंदु है, जहाँ परस्पर पुस्तकों के आदान-प्रदान करने की आदत जन्म लेती है।

मैंने बहुत बार यह भी देखा है कि छोटे बच्चे अपनी पुस्तकें या खिलौने भी वहाँ पर रखने के लिए आते हैं। मुझे चेहरे का भाव पढ़ने में बहुत आनंद आता है। मैं जब भी किसी बच्चे को ऐसे पुस्तकालय में कोई मनपसंद पुस्तक उठाते देखती हूँ तो उसकी मुस्कान उसके अंदर की खुशी व्यक्त कर रही होती है। कुछ वैसा ही उल्लास दिखाई देता है जब वे वहाँ कुछ रखने आते हैं। ऐसी योजनाओं का सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि हरेक आने-जाने वाले के मन में पुस्तक पढ़ने की रुचि जाग्रत होती है।

समाज में विभिन्न प्रकार की आय वाले लोग होते हैं। भोजन, कपड़ा एवं जीवन की दूसरी आवश्यकताओं की पूर्ति में उनकी आय का बहुत-सा भाग खर्च हो जाता है। ऐसे में अपने मनोरंजन के लिए या ज्ञानवर्धन के लिए पुस्तकें खरीदने की वे सोचते तक नहीं। बड़े पुस्तकालयों में भी लाने और लौटाने के लिए समय-सीमा निर्धारित है। ऐसे में निःशुल्क नन्हे पुस्तकालय उनके लिए वरदान साबित होते हैं। उन्हें जल्दी से पुस्तक लौटाने की कोई चिंता नहीं होती।

कोविड महामारी के समय में तो नुक्कड़ के इन नन्हे पुस्तकालयों ने लोगों का खूब साथ निभाया। महामारी से बचने के बंधन-नियमों के कारण स्थानीय पुस्तकालय तो बंद कर दिए गए थे। ऐसे में लोग यहाँ पर पुस्तकों का आदान-प्रदान करके अपना समय व्यतीत करते हैं और शौक भी पूरा हो जाता है। साइकिल दौड़ लगाते हुए कई लोग दौड़-भाग के लिए बनी विशेष पगडंडियों पर बैठकर आराम से इन पुस्तकों का आनंद लेते दिखाई देते हैं। केवल दो शेल्फ वाले इस पुस्तकालय में महान लोगों की जीवनियाँ, आत्मकथाएँ, स्कूल के कोर्स संबंधी किताबें, उपन्यास कविता संग्रह, बच्चों के मनोरंजन की किताबें आदि सभी प्रकार की पुस्तकें मिल जाती हैं। जैसी जिसकी रुचि हो वो वैसी पुस्तक ले सकता है और पढ़कर वहीं पर वापस भी रख सकता है। है न कितनी सुविधा की बात?

पुस्तकें ज्ञान का भंडार भी हैं और मनोरंजन का साधन भी। ये मनुष्य के चरित्र निर्माण में गुरु एवं सखा के समान सहायता करती हैं। ये वो अनमोल निधियाँ हैं जिनमें जो चाहो मिल जाएगा, लेकिन ढूँढ़ना तो आपको ही पड़ेगा।

क्रांतिकारी रानी खैरागढ़ी

15 अगस्त, 1947 को जब देश अंग्रेजों की गुलामी से मुक्त हुआ तो कितनी खुशियाँ मनाई गई थीं, लेकिन कौन जानता है कि कितनी माताओं ने देश की खातिर अपने जवान बेटों की आहुति दी...कितनी बहनों के सुहाग उजड़े, तब जाकर कहीं यह आजादी प्राप्त हुई थी।

आजादी के लिए कई क्रांतिकारियों ने फाँसी के फंदे को हँसते-हँसते चूमा था। कितने नाम गिनाए जाएँ, किस-किस के नाम बताए जाएँ, जो कि मातृभूमि की खातिर अंतिम साँसों तक अंग्रेजों से लोहा लेते रहे। आज अगर हम उन शहीदों के नामों की गिनती करने लगे तो उनके नामों का ही एक पूरा ग्रंथ बन जाएगा। हमारे देश के

डॉ. कमल के. 'प्यासा'

संप्रति : पूर्व प्रधानाचार्य एवं पूर्व संपादक, मंडी मनरेगा पत्रिका व काउंसलर, इग्नू।

शिक्षा : एम.फिल., पी-एच.डी. व ए.डब्ल्यू.सी. (जीव-जंतु कल्याण)।

प्रकाशन : कहानी, कविता व कला संस्कृति विषयों पर चार पुस्तकें प्रकाशित।

सम्मान : हिमाचल प्रदेश सरकार द्वारा श्रेष्ठ अध्यापक, प्रदेश सरकार व भाषा संस्कृति विभाग द्वारा लेखन, राज्य विज्ञान तकनीकी व पर्यावरण परिषद द्वारा विज्ञान की विभिन्न उपलब्धियों के लिए सम्मानित।

संपर्क : मोबाइल– 9882176248

ई-मेल : pyasa.kamalpruthi@gmail.com

क्रांतिकारी दीवानों का कोई अंत नहीं, कई तो ऐसे गुमनाम क्रांतिकारी हैं, जिनके बारे में हम जानते तक नहीं। देश में कोई भी ऐसा गाँव व शहर नहीं होगा, जहाँ से अंग्रेजों के विरुद्ध कोई आवाज न उठी हो।

हमारा पहाड़ी क्षेत्र हिमाचल भी देश के स्वतंत्रता संग्राम में पीछे नहीं रहा। उस समय यहाँ बहुत-सी छोटी-छोटी रियासतें हुआ करती थीं जिन्हें पंजाब की पहाड़ी रियासतों के नाम से जाना जाता था। इन्हीं रियासतों के युवा पढ़ने के लिए बाहर जाते थे और वहीं से इनके द्वारा क्रांतिकारी गतिविधियों की जानकारियाँ भी आती रहती थीं। इस तरह इस क्षेत्र में भी अपने हिसाब से यह सारा कार्यक्रम चलता था। मंडी रियासत का नाम क्रांतिकारी गतिविधियों के लिए विशेष रूप से भी जाना जाता था, क्योंकि इन गतिविधियों में इस रियासत की एक रानी का नाम विशेष रूप से चर्चित था। आज भी उस रानी का नाम बड़े ही मान-सम्मान से लिया जाता है। मंडी रियासत उस समय अपनी नमक की खानों व व्यापार के लिए भी प्रसिद्ध थी। इसी के फलस्वरूप अंग्रेजों के लालची नज़रें मंडी पर लालायित थीं और उन्होंने इस तरफ अपना जाल बिछाना शुरू कर दिया था, लेकिन यहाँ के क्रांतिकारी भी किसी से कम नहीं थे, उन्होंने अंग्रेजों के नाक में दम कर रखा था क्योंकि यहाँ के क्रांतिकारियों के पीछे मंडी की रानी ललिता कुमारी का विशेष हाथ था। रानी ललिता कुमारी जो कि खैरागढ़ से संबंध रखती थीं, इसलिए उसे 'खैरागढ़ी' के नाम से पुकारा जाता था। इसी रानी खैरागढ़ी के कारण ही मंडी के युवा क्रांतिकारी समस्त पंजाब में चर्चित रहते थे।

खैरागढ़ी मंडी के राजा भवानी सेन की दूसरी रानी (पत्नी) थी। राजकुमारी खैरागढ़ी के गुणों व रूप की चर्चा उस समय, आस-पास की रियासतों में आम थी। राजा भवानी सेन ने भी जब राजकुमारी ललिता के

संबंध में सुना तो वह भी मन-ही-मन उसे पाने की सोचने लगा। राजा भवानी सेन खुद भी तो गोरा लंबा, सुंदर व चुस्त जवान था। इतना ही नहीं, बल्कि वह सुरा-सुंदरियों व कला संगीत में भी बहुत रुचि रखता था। फिर भला वह कैसे खैरागढ़ी से दूर रह सकता था और वह उससे शादी रचाने में सफल भी हो गया था। भवानी सेन ने ही अपनी रानी खैरागढ़ी के लिए एक अलग से महल, भवानी निवास व दरबार हाल

का निर्माण करवाया था। दिसंबर-1911 में जिस समय भवानी सेन दिल्ली दरबार से वापस मंडी पहुँचे तो वह कुछ बीमार पड़ गए और फिर लगातार उनका स्वास्थ्य बिगड़ता ही चला गया। बाद में उसी बीमारी के चलते उनकी मृत्यु हो गई। राजा भवानी सेन की दुखद मृत्यु के पश्चात रानी खैरागढ़ी ने अपने उत्तराधिकारी के रूप में, अपने निकट के रिश्ते के (मियाँ किशन सिंह के बेटे) बालक जोगिंदर सेन को गोदी पुत्र बनाकर, उसे 28 अप्रैल, 1913 को मंडी रियासत का राजा घोषित कर दिया। इस घोषणा के पश्चात रानी ने अपने पड़ोसी व मित्र राजाओं से मिलकर अंग्रेजों के विरुद्ध अपना अभियान तेज कर दिया क्योंकि अंग्रेज रानी के गोदी पुत्र को राजा मानने पर आना-कानी करने लगे थे। तभी तो रानी ने अपनी स्थिति को मजबूत करने के लिए क्रांतिकारियों से गठजोड़ शुरू कर दिया था। इस तरह रानी के संपर्क में मुख्य क्रांतिकारियों में बल्ह का सिधू खराडा, छिछोली का मियाँ जवाहर सिंह, मंडी टारना का भाई हिरदा राम व खनक गली का भाई हरदेव (स्वामी कृष्णा नंद) आदि शामिल थे। इन क्रांतिकारियों से मिलकर रानी ने अंग्रेजों को मंडी से खदेड़ने के लिए उनके विरुद्ध एक संस्था का गठन भी कर दिया और खुद उसकी मुखिया बन गई। जब संस्था की खबर मंडी क्षेत्र के अन्य युवकों को मिली तो कई और क्रांतिकारी भी आ मिले, जिनके नाम इस प्रकार से हैं—बदरी, ज्वाला सिंह, सिधू, लौंगु, सरदा राम तथा दलीप सिंह आदि। युवकों द्वारा गठित संस्था से मंडी तथा सुकेत (सुंदर नगर) दोनों रियासतों से क्रांति की चिनगारी सुलग उठी और संस्था की प्रथम बैठक का आयोजन बल्ह के बड़सू गाँव में (पंजाब के जाने-माने क्रांतिकारी निधान सिंह चुग की अध्यक्षता में) वर्ष 1914 में किया गया। बैठक में अंग्रेजों के विरुद्ध कई घातक योजनाएँ बनाकर उन पर विस्तार से चर्चा भी गई।

ऐसा भी बताया जाता है कि जब भाई हरदेव ने मंडी में गदर पार्टी का गठन किया तो उसके साथ भाई हिरदा राम भी पार्टी में शामिल हो गए थे और फिर दोनों बड़े क्रांतिकारियों के प्रयत्नों से यहाँ की क्रांतिकारी गतिविधियों में और भी तेजी आ गई। जब रानी खैरागढ़ी को गदर पार्टी की जानकारी मिली तो वह भी गुप्त रूप में पार्टी की सदस्य बनकर, पार्टी को हर तरह से मदद करने लगीं। अब तो क्रांतिकारियों के सिर पर रानी का हाथ हो गया था, इस प्रकार अब कोई कमी नहीं रही थी और सभी काम भी खुली तरह से व निर्भीक होकर करने लगे थे। तभी भाई हरदेव व रानी ने आपस में गुप्त विचार-विमर्श करके भाई हिरदा राम को बम तैयार करने के प्रशिक्षण के लिए लाहौर में डॉ. मथरा सिंह के पास भेज दिया। लाहौर उस समय पंजाब की क्रांतिकारी गतिविधियों का मुख्य केंद्र था। भाई हिरदा राम जब बम बनाने की कला में दक्ष हो गए तो वह मंडी वापस आ गए। फिर रानी से विचार-विमर्श करने के पश्चात भाई हिरदा राम बड़सू गाँव में बम तैयार करने लग गए। बने बमों का परीक्षण जोगिंदर नगर के जंगलों में किया जाने लगा।

इस प्रकार जब ठीक प्रकार के बम तैयार होने लगे तो उनका प्रयोग मंडी में ही नहीं, बल्कि पंजाब के बड़े-बड़े क्रांतिकारियों द्वारा लाहौर व अन्य शहरों में भी किया जाने लगा। इसी बीच दलीप सिंह व ध्यान सिंह चुग अंग्रेजों की पकड़ में आ गए। दलीप सिंह अंग्रेजों की

यातना सहन नहीं कर पाया और उसने सब-कुछ उगल दिया। फिर क्या था...भेदों की परतें खुलती गईं और फिर सबकी बारी आ गई। जो भी पकड़ में आता, उस पर झूठे आरोप लगाकर डकैती का मुकदमा चलाया जाता। इसी तरह के आरोप लगाकर सिधू खराड़े को उम्र कैद तथा निधान सिंह व ध्यान सिंह को फाँसी की सजा सुनाई गई।

इस प्रकार बेवजह मनमाने ढंग से सजाएँ सुनाए जाने पर रानी खैरागढ़ी के मन को भारी आघात पहुँचा और उन्होंने अंग्रेजों से बदला लेने की ठान ली व अगली योजनाएँ बनाने लगीं, पर यह किसे मालूम था कि अंग्रेज रानी को भी नहीं छोड़ेंगे, क्योंकि अंग्रेजों को कई एक क्रांतिकारियों की भनक मिल चुकी थी और उन्होंने जगह-जगह से धड़-पकड़ शुरू कर दी। उधर गदर पार्टी का भी राज खुल गया था और वह भी अंग्रेजों की नज़र में खटकने लगी थी। भाई हिरदा राम को लाहौर के अनारकली बाजार में ही दबोच लिया गया था। भाई हरदेव बचते-बचाते शिमला से कराची पहुँच गए।

"एक ओर तो 09 फरवरी, 1912 को राजा भवानी सेन की मृत्यु का दुख अभी बिसरा ही नहीं था कि दूसरी मुसीबत उस पर देश व प्रजा हित के लिए किए गए कार्यों के बदले में, जिलावतन की सजा सुनाई गई। वक्त गुजर गया, सजा भी रानी ने भुगत ली, लेकिन क्या गुजरी होगी, उस दिन मंडी के लोगों पर... जब एक ओर तो उसके (रानी खैरागढ़ी के ज़िलावतन समाप्ति पर) आगमन में स्वागत की तैयारियाँ हो रही थीं और दूसरी तरफ रानी खैरागढ़ी भी तो अपनी प्यारी प्रजा के पास उसी क्रांतिकारी नगर पहुँच रही थी, जहाँ से उसके क्रांतिकारी कदम उठे थे।"

रानी खैरागढ़ी को भी पकड़ लिया गया और फिर सभी पर लाहौर कांड का मुकदमा चलाया गया। बाद में नागचला खजाना डकैती कांड को साथ जोड़ कर रानी को (क्रांतिकारियों का साथ देने के लिए) जिलावतन की सजा सुनाई गई। इन सजाओं की प्रतिक्रिया मंडी के साथ-ही-साथ दूसरी जगहों व रियासतों में होने से सारे पंजाब में तहलका मच गया और लोगों द्वारा भारी रोष प्रकट किया गया। परिणामस्वरूप भाई हिरदा राम की फाँसी की सजा को उम्र कैद में बदल दिया गया, लेकिन रानी खैरागढ़ी की सजा में कोई भी परिवर्तन नहीं हुआ।

रानी खैरागढ़ी एक देशभक्त व क्रांतिकारी नारी ही नहीं थी, बल्कि वह तो रानी के रूप में एक शक्ति थी जिसने अपने प्रभाव व स्वभाव से सभी युवाओं में क्रांति की भावना जागृत कर दी थी। ऐसा भी कहा जाता है कि वह तो एक ऐसी नारी रूपी शक्ति थी, जिसको अपने से अधिक अपनी प्रजा व देश से प्रेम था। इन सभी बातों के साथ-ही-साथ वह प्रथम ऐसी महिला थी, जिसने अखिल भारतीय महिला संस्थान में भी अपना नाम सबसे ऊपर ही रखा था। आज भी रानी खैरागढ़ी का चित्र दिल्ली के इसी संस्थान में देखा जा सकता है।

रानी खैरागढ़ी ने नारी के अधिकारों के लिए क्या कुछ नहीं किया? क्या वह सती प्रथा के विरुद्ध नहीं थी? क्या उसने बेगार प्रथा को समाप्त करके दम नहीं लिया? इतना ही नहीं उसने महिलाओं व बाल मजदूरी पर प्रतिबंध लगवाकर हटली के किसानों का साथ देते हुए अपने वादों से पीछे नहीं हटी और उनकी माँगों को उचित बताकर उनका साथ देती रही।

खैरागढ़ी ने तो उस समय अपने क्रांतिकारी कदम उठाए थे, जब चारों ओर अंधविश्वासों का बोलबाला था और नारी को पर्दे में ही रहना पड़ता था। सती प्रथा प्रचलित थी, विधवा विवाह नहीं होते थे तथा नारी को कई प्रकार की मुसीबतों का सामना करना पड़ता था। उस समय रानी खैरागढ़ी खुद इन सभी रूढ़ियों और अंधविश्वासों को ठुकराकर अपने आप क्रांति की ज्वाला के रूप में प्रकट हुई थी, पर विधाता की लिखी को कौन टाल पाया है...किसने सोचा था कि विवाह के मात्र पाँच वर्ष बाद ही रानी विधवा हो जाएगी। एक ओर तो 09 फरवरी, 1912 को राजा भवानी सेन की मृत्यु का दुख अभी बिसरा ही नहीं था कि दूसरी मुसीबत उस पर देश व प्रजा हित के लिए किए गए कार्यों के बदले में, जिलावतन की सजा सुनाई गई। वक्त गुजर गया, सजा भी रानी ने भुगत ली, लेकिन क्या गुजरी होगी, उस दिन मंडी के लोगों पर...जब एक ओर तो उसके (रानी खैरागढ़ी के ज़िलावतन समाप्ति पर) आगमन में स्वागत की तैयारियाँ हो रही थीं

और दूसरी तरफ रानी खैरागढ़ी भी तो अपनी प्यारी प्रजा के पास उसी क्रांतिकारी नगर पहुँच रही थी, जहाँ से उसके क्रांतिकारी कदम उठे थे। काश! वह ठीक-ठाक पहुँच पाती...! लेकिन जोगिंदर नगर के 'हरनाल' नामक स्थान के निकट रानी की तबीयत अचानक बिगड़ गई और वहीं उसके प्राण पखेरू उड़ गए! कहते हैं कि इसके पीछे भी कोई गहन साजिश ही थी। एकदम से अचानक तबीयत बिगड़ना और वहीं प्राण निकल जाना...बात बनती नहीं। आज भी रानी की अचानक मृत्यु का रहस्य, जैसे का तैसा ही बना है! तो क्या यह रहस्य, रहस्य ही बना रहेगा? क्या इसकी किसी को कोई खबर नहीं? क्या रानी की मौत वास्तव में प्राकृतिक मौत ही थी या कुछ अन्य? आज भी ये सारे प्रश्न कई बार सोचने को मजबूर कर देते हैं। क्या मंडी की जनता अपनी क्रांतिकारी रानी को भुला पाएगी? कभी नहीं! रानी खैरागढ़ी की याद आज मंडी के इतिहास में ही नहीं, बल्कि देश के क्रांतिकारियों के इतिहास में एक वीरांगना के रूप में याद रहेगी।

बाल स्वातंत्र्य सेनानी राजा जोरावर

अंग्रेजी राज के विरुद्ध छेड़े गए स्वतंत्रता संग्राम में हमारे वीर सेनानियों ने अदम्य साहस, सूझ-बूझ और मातृभूमि के प्रति समर्पण को बड़ी बहादुरी से निभाया। इनमें अनेक वीर तो खेलने-कूदने की उम्र में ही शहीद हो गए, क्योंकि भारत माँ की आन, बान और शान पर आँच उन्हें मंजूर नहीं थी।

ऐसा ही एक वीर बालक था जोरावर... यानी राजा जोरावर सिंह जो तत्कालीन हैदराबाद जैसी बड़ी रियासत से सटी एक छोटी रियासत जेरापुर का महज 15-16 की उम्र का राजा था। जोरावर ने 1857 की क्रांति के समय अंग्रेजों से लड़ने के लिए अरब और रोहिला पठानों की एक सैन्य टुकड़ी तैयार की थी। इतनी कम उम्र में भी गजब का रणनीतिकार, सजग और बहादुर था जोरावर।

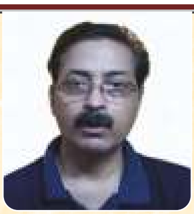

विजय शर्मा

जन्म : 13 अप्रैल, 1969, वाराणसी।

शिक्षा : एम.ए. (पत्रकारिता), पी-एच.डी. (जारी)।

प्रकाशन : विगत 30 वर्षों से प्रिंट, टीवी, रेडियो और डिजिटल मीडिया में कार्य करते हुए न्यूज रिपोर्ट, डॉक्यूमेंट्री, आलेख, साक्षात्कार, समीक्षाएँ, कविता, कहानी इत्यादि प्रकाशित एवं प्रसारित।

संप्रति : असिस्टेंट प्रोफेसर, आई.आई.एच.एस. कॉलेज, गाजियाबाद।

संपर्क : मोबाइल– 9899132960

ई-मेल– freesharma24@gmail.com

दरअसल, पिता की अचानक मृत्यु हो जाने पर उसे राजा की जिम्मेदारी कबूल करनी पड़ी क्योंकि एक तो वह अपने पिता के उत्तराधिकारी थे और दूसरा अंग्रेजों के बढ़ते हमलों से मुकाबले के लिए ऐसा जरूरी था।

खैर...यह वो वक्त था जब 1857 की क्रांति में बुरी तरह मात खाने के बाद अंग्रेज नए-नए षड्यंत्र रचने लगे थे। ऐसी ही एक खतरनाक रणनीति थी–'डिवाइड एंड रूल' यानी 'फूट डालो और राज करो'। भारतीयों को जात-पात, भाषा, धर्म और क्षेत्र के नाम पर लड़ाना शुरू कर दिया गया और हालात खराब होते गए।

ऐसे में जोरावर ने तय किया कि आस-पास की दूसरी रियासतों को भरोसे में लेकर एक सुरक्षा घेरा बनाना होगा ताकि अंग्रेज इस इलाके में मनमानी न कर सकें। खुद पहल करते हुए वह हैदराबाद गए जो सबसे बड़ी राजशाही रियासत थी और वहाँ के निज़ाम अफज़ल-उद्-दौला के दरबार में इस उम्मीद पर दस्तक दी कि वह उसकी बात को अहमियत देंगे।

जोरावर–"निज़ाम साहब, हम आपसे एक गुज़ारिश करने आए हैं।"

अफज़ल-उद्-दौला–"जी ज़रूर, हम आपकी क्या मदद कर सकते हैं?"

जोरावर–"निजाम साहब, फिरंगी हुकूमत की बर्बरता और साज़िशें फिर बढ़ रही हैं। गदर को कुचलने में मिली नाकामी के बाद अब वो हमें आपस में लड़ा रहे हैं। इसलिए हमें मिलकर काम करना होगा ताकि वो कामयाब न होने पाएँ।"

अफज़ल-उद्-दौला–"राजा जोरावर, मैं भी ऐसा ही चाहता हूँ। हम कल सुबह तफ़सील से बात करते हैं। तब तक हमारे ख़ास मेहमान की तरह इस किले में रहें। हमारे वज़ीर सालारजंग आपके आराम और कल की बातचीत के सारे इंतज़ाम कर देंगे।"

सालारजंग—(चापलूसी और मक्कारी के मिले-जुले स्वर में) "जो हुक्म मेरे आक़ा, हम महाराज और उनके सैनिकों का पूरा ख़याल रखेंगे। आइए महाराज..."

"टेलर ने उससे राज बताने के एवज में रेजिडेंसी से आममाफी और इनाम दिलाने की बात बार-बार कही, दोस्ती की कसमें दीं, लेकिन जोरावर ने सब ठुकरा दिया और कहा कि "मैं देशद्रोह नहीं कर सकता और सज़ा या मौत का सामना करने के लिए तैयार हूँ। कैद, फाँसी या कालापानी..., इनमें से कोई भी इतना भयंकर नहीं है जितना कि विश्वासघात।"

अफज़ल-उद्-दौला उर्फ मीर तहनियत अली ख़ान 1857 से 1869 तक हैदराबाद के निज़ाम यानी शासक थे और यहाँ के पहले

शासक क़मरुद्दीन खान आसफ जाह के पाँचवें वंशज थे। दरअसल, भारत में ब्रिटिश शासन के दौरान हैदराबाद रियासत पर नवाबों की हुकूमत रही। खैर...निज़ाम के दरबार में अपने शानदार स्वागत से जोरावर खुश था वहीं निज़ाम भी उसकी सूझ-बूझ देखकर हैरान थे।

सालारजंग—(अपने भरोसेमंद सिपहसालार से) "सारी तैयारी पूरी है न? देखो, कोई गलती नहीं होनी चाहिए। एक तो जोरावर खुद बहुत बहादुर है, दूसरा उसके अंगरक्षक साये की तरह उसके साथ रहते हैं और तीसरा...अगर हमारी साज़िश कामयाब न हुई तो फिरंगी हुकूमत से हमें इनाम-इकराम की जगह मिलेगी लानत-मलानत।"

सिपहसालार—"हुज़ूर आप फिक्र न करें, सब-कुछ वैसे ही होगा जैसा आपने कहा है।"

दरअसल, सालारजंग अंग्रेजों से मिला हुआ था और उसी रात उसकी शह पर एक अफसर के साथ कुछ अंग्रेज सैनिक चुपके से किले में दाखिल हुए और जोरावर के अंगरक्षकों को काबू में करने के बाद एक सोते हुए निहत्थे राजा और सेनानी को जबरन गिरफ्तार करके ले गए।

अंग्रेजी फौज ने जोरावर पर बहुत अत्याचार किए। उनकी सैन्य तैयारी के बारे में पूछा, क्रांतिकारियों के नाम और ठिकाने पूछे और तरह-तरह के प्रलोभन भी दिए, लेकिन वह बार-बार यही कहते रहे कि मातृभूमि से विश्वासघात नहीं कर सकते, चाहे जान ही क्यों न गँवानी पड़े। थक-हारकर जोरावर से सारे राज उगलवाने के लिए कर्नल मेटोज टेलर नाम के नए अफसर को नियुक्त किया गया, लेकिन वह जितना सख्त था, उतना ही दोस्ताना मिजाज़ का भी था। जोरावर की बहादुरी और त्याग से उसके मन में हमदर्दी जागी और जल्द ही दोनों दोस्त बन गए। जोरावर उसे प्यार से 'अप्पा' कहने लगा।

टेलर ने उससे राज बताने के एवज में रेजिडेंसी से आममाफी और इनाम दिलाने की बात बार-बार कही, दोस्ती की कसमें दीं, लेकिन जोरावर ने सब ठुकरा दिया और कहा कि "मैं देशद्रोह नहीं कर सकता और सज़ा या मौत का सामना करने के लिए तैयार हूँ। कैद, फाँसी या कालापानी..., इनमें से कोई भी इतना भयंकर नहीं है जितना कि विश्वासघात। इसलिए मुझे फाँसी की बजाय तोप से बाँधकर उड़ा दीजिए। मैं कुछ नहीं कहूँगा और जरा भी नहीं डरूँगा।"

आगे चलकर टेलर की सिफारिश पर जोरावर को मृत्युदंड की जगह कालापानी की सजा सुनाई गई अर्थात अंडमान-निकोबार द्वीप में यातनाएँ देने के मकसद से बनाई गई जेल, जहाँ अमानवीय तरीके से कैदी को एक कालकोठरी में अकेले जंजीरों से बाँधकर रखा जाता था। खैर... जोरावर को भी अंग्रेज सैनिक नाव से कालापानी की जेल ले जाने लगे।

जोरावर (मन में विचार करते हुए)—"मैं कालेपानी की सजा से मौत को बेहतर समझता हूँ...मैं भारत माँ का बहादुर बेटा हूँ, कोई कायर नहीं...कालेपानी की सजा को मेरी रियासत का सामान्य-सा व्यक्ति भी नहीं पसंद करेगा...वह इसमें अपना अपमान महसूस करेगा...फिर मैं तो राजा हूँ, इसे खुद कैसे पसंद कर सकता हूँ।"

अगले ही पल समुद्र में बीच रास्ते जोरावर ने एक अंग्रेज पहरेदार से किसी बहाने से रिवॉल्वर लेकर अचानक खुद को गोली मार ली। एक छोटी-सी रियासत के छोटी उम्र के राजा ने देश के लिए बड़ा काम कर दिखाया। मातृभूमि को प्राण अर्पित कर दिए, लेकिन अंग्रेजों के आगे घुटने नहीं टेके।

भारत की पहली मीटरगेज रेलवे 150 गौरवपूर्ण वर्ष

जी हाँ बिलकुल, भारत की राजपुताना रेलवे ने भारत एवं विश्व की सबसे पहली मीटरगेज रेलगाड़ी चलाई थी। देश में बड़ी लाइन की प्रथम रेलगाड़ी आमतौर पर सभी रेल पाठकों एवं रेल के बारे में जानकारी रखने वाले लोगों को है, किंतु मीटरगेज (1,000 मिमी. चौड़ाई वाली गेज) की प्रथम रेलगाड़ी कब और कहाँ चली, किस रेलवे में चली तथा इसी प्रकार मीटरगेज की सबसे नई रेल लाइन कब और कहाँ बनी तथा इस पर कब मीटरगेज की रेलगाड़ी चली, इसकी जानकारी लोगों को बहुत कम है, जबकि मीटरगेज भी अपने समय में काफी प्रचलित और विकसित थी तथा यह बड़ी लाइन को टक्कर देती थी। समय बदला आमान परिवर्तन या प्रोजेक्ट यूनीगेज लागू होने से मीटरगेज कम होनी शुरू हुई। वर्ष 1951 में मीटरगेज की लंबाई 29,536 कि.मी. थी तो वहीं आमान परिवर्तन या प्रोजेक्ट यूनीगेज लागू होते समय वर्ष 1991 में मीटरगेज की लंबाई 32,122 कि.मी. थी तथा अब इसकी लंबाई अनुमानतः तीन सौ कि.मी. से भी कम रह गई है। अभी फरवरी-2023 में भारत और विश्व की सबसे पहली मीटरगेज रेलगाड़ी के चलने का 150वाँ वर्ष पूर्ण होने जा रहा है। इसी अवसर पर यह रोचक जानकारी प्रस्तुत है। रोचक बात यह है कि मीटरगेज 1,000 मि.मी. के अलावा भी अन्य कई प्रकार का होता है, लेकिन मैं अपने देश के मीटरगेज की बात कर रहा हूँ जिसकी चौड़ाई 1,000 मि.मी. होती है।

जूनागढ़ मीटर गेज ट्रेन

विमलेश चंद्र

शिक्षा : इलेक्ट्रिकल इंजीनियरिंग एवं रेल ट्रांसपोर्ट तथा मैनेजमेंट में डिप्लोमा।

प्रकाशन : विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में विज्ञान, तकनीकी, इंजीनियरिंग, गणित, साहित्य, व्यंग्य तथा रेल विषय पर 404 से अधिक रचनाएँ प्रकाशित। 'भारतीय रेल : एक परिचय' पुस्तक प्रकाशित।

संप्रति : सहायक कारखाना प्रबंधक, भावनगर, गुजरात। विभिन्न विषयों पर लेखन एवं पाठन।

पुरस्कार : रेलवे के क्षेत्रीय स्तर पर हिंदी तथा लेखन क्षेत्र में कई पुरस्कार।

संपर्क : मोबाइल : 9574011888

ई-मेल : vimleshchandra.awmbvp@gmail.com

प्रथम मीटरगेज रेल लाइन बनाने का निर्णय—भारत में प्रथम रेलगाड़ी चलाने का जो निर्णय GIP एवं EIR द्वारा वर्ष 1849 में लिया गया था। उसके अंतर्गत मानक गेज या स्टैंडर्ड गेज या इंटरनेशनल गेज (चौड़ाई 1,435 मि.मी.) वाली रेल लाइन तथा रेलगाड़ियाँ चलाना शामिल था, किंतु बाद में पाँच फिट छह इंच अर्थात 1,676 मि.मी. चौड़ाई वाली बड़ी लाइन बनाने का निर्णय लिया गया।

फलस्वरूप 16 अप्रैल, 1853 को बड़ी लाइन की प्रथम रेलगाड़ी बोरिबंदर से ठाणे के बीच चलाई गई। इस प्रकार पूरे भारत में यह बड़ी लाइन बनाने का निर्णय लिया गया था। उस समय लॉर्ड डलहौजी पूरे भारत में बड़ी लाइन वाली रेल लाइन बनाने के पक्ष में थे, किंतु 1868 में ब्रिटिश सैनिकों को त्वरित गति से लाने-ले जाने के लिए उत्तर-पश्चिम प्रांत में रेल लाइनों को जल्दी बनाने के लिए

नीलगिरी मीटर गेज ट्रेन

मीटरगेज प्रणाली अपनाई गई। इसके लिए वर्ष 1870 में लॉर्ड मेयो द्वारा विचार किया गया और मीटरगेज के बारे में विश्लेषण एवं मीटरगेज का समर्थन करने के कारण मीटरगेज प्रणाली अपनाई गई। 30 दिसंबर, 1870 को इस बारे में सहमति मिल गई तथा जनवरी-1871 में भारत में सर्वप्रथम मीटरगेज प्रणाली अपनाने एवं इसके निर्माण का निर्णय ले लिया गया। इसके फलस्वरूप सर्वप्रथम दिल्ली-रेवाड़ी रेलखंड जो बड़ी लाइन बनने वाली थी, उसे मीटरगेज में बनाने का निर्णय लेकर मीटरगेज का निर्माण शुरू किया गया। इसलिए लॉर्ड मेयो को 'मीटरगेज रेल लाइन बनाने का जनक' कहा जाता है।

प्रथम मीटरगेज रेल लाइन का निर्माण : राजपूताना स्टेट रेलवे का गठन वर्ष 1869 में किया गया था, जिसको उत्तर-पश्चिम प्रांत में रेल लाइनों का निर्माण कार्य करना तथा रेलगाड़ियाँ चलाना था। दिल्ली-रेवाड़ी खंड का मई-1868 में मि. डब्ल्यू. सी. फर्निवाल द्वारा सर्वे किया गया तथा कुछ माह में ही इन्होंने सर्वेक्षण पूरा कर दिया जो उस समय दिल्ली डिस्ट्रिक्ट (दिल्ली-बाँदीकुई रेलखंड) के सुपरिंटेंडिंग इंजीनियर थे। अप्रैल-1870 में इस खंड को बड़ी लाइन में बनाने के हिसाब से मिट्टी का कार्य (अर्थवर्क) शुरू कर दिया गया था, किंतु जनवरी-1871 में इसे मीटरगेज रेल लाइन बनाने का नया निर्णय लिया, जिसके कारण लागत का दुबारा आकलन किया गया। मार्च-1871 में दिल्ली डिस्ट्रिक्ट का कार्य अधीक्षण इंजीनियर मेजर एफ.एस. स्टैन्टन को दे दिया गया। इस प्रकार जनवरी 1871 से दिल्ली से रेवाड़ी तक मीटरगेज रेल लाइन बनाने का कार्य शुरू हुआ, जो दिसंबर-1872 में जाकर पूरा हुआ, जिसे राजपूताना स्टेट रेलवे ने बनाया। इस 84 कि.मी. लंबी मेन लाइन के अतिरिक्त दिल्ली से 41 कि.मी. आगे गढ़ीहरसरु से फर्रुखनगर तक एक शाखा या ब्रांच लाइन (12.3 कि.मी.) भी बनाई गई, जो फर्रुखनगर से नमक ढुलाई के लिए बनाई गई थी। फर्रुखनगर में नमक का बहुत बड़ा डिपो था, जहाँ से नमक को इन मीटरगेज वाली रेलगाड़ियों से दिल्ली और सुल्तानपुर तक भेजा जाता था। बाद में रेवाड़ी से अलवर तक के खंड की रेल लाइन 15 सितंबर, 1874 को तथा अलवर-बाँदीकुई खंड को 07 दिसंबर, 1874 को यातायात हेतु खोला गया था। जयपुर तथा अजमेर के लिए यह लाइन 1875 में बनी जो वर्ष 1881 में गुजरात के पालनपुर में जाकर मिल गई। पालनपुर में पहले से ही अर्थात वर्ष 1879 में ही अहमदाबाद से पालनपुर के बीच मीटरगेज रेल लाइन बन कर चालू थी। इस प्रकार

01 जनवरी, 1881 को अहमदाबाद से दिल्ली तक सीधी रेलगाड़ी का परिचालन शुरू हो गया था।

प्रथम मीटरगेज रेलगाड़ी की शुरुआत : भारत एवं विश्व की प्रथम मीटरगेज रेलगाड़ी 14 फरवरी, 1873 को तत्कालीन राजपूताना-मालवा रेलवे द्वारा चलाई गई थी। यह रेलगाड़ी दिल्ली से रेवाड़ी के बीच 84 कि.मी. लंबी मेन लाइन पर तथा उसी दिन 12.3 कि.मी. लंबी शाखा लाइन गढ़िहरसरु से फर्रुखनगर साल्ट वर्क डिपो तक चलाई गई थी। यह प्रथम मीटरगेज रेलगाड़ी न केवल भारत एवं एशिया की, बल्कि विश्व की सबसे पहली मीटरगेज वाली कॉमर्शियल या व्यावसायिक रेलगाड़ी थी। दिल्ली-रेवाड़ी मेन लाइन पर मालगाड़ी तथा यात्री रेलगाड़ी दोनों चलती थीं। किंतु गढ़िहरसरु-फर्रुखनगर शाखा लाइन पर वर्ष 1947 तक अर्थात 1873 से लेकर 1947 तक इस पर केवल मालगाड़ी ही चलती थी। वर्ष 1947 से इस शाखा लाइन पर यात्री रेलगाड़ी भी शुरू कर दी गई थी। इस प्रथम मीटरगेज रेलगाड़ी का प्रथम रेल इंजन का नाम 'ड्यूब' था, जो 2-4-0 श्रेणी वाला टैंक टाइप वाला इंजन था। इसे इंग्लैंड की ग्लासगो में 'ड्यूब एंड ग्लासगो कंपनी' ने बनाया था। यह इंजन वर्ष 1872 में बना था। इस प्रकार के कुल 10 इंजन उस समय मँगाए गए थे। इस प्रकार के इंजनों में से एक इंजन लॉर्ड लावेंरस भी था जो वर्ष 1874 में बना था। यह अभी भी गोरखपुर के रेल संग्रहालय में विरासत के रूप में रखा है।

अजमेर कारखाने में बना पहला इंजन F-734

प्रथम मीटरगेज रेल लाइन का गेज परिवर्तन : यह रोचक और आश्चर्यजनक घटना है कि इस प्रथम मीटरगेज रेल लाइन को सर्वप्रथम वर्ष 1991-92 में गेज परिवर्तन या यूनीगेज प्रोजेक्ट में चयन किया गया, किंतु आमान परिवर्तन की इस योजना से गढ़िहरसरु तथा फर्रुखनगर काफी दिनों तक वंचित रहा। वर्ष 1991-92 में शुरू हुए आमान परिवर्तन के समय दिल्ली-रेवाड़ी लाइन के साथ-साथ जयपुर-सवाईमाधोपुर, मेहसाना-वीरमगाम तथा छपरा-औड़िहार रेलखंड को भी गेज परिवर्तन हेतु चयनित किया गया था। दिल्ली से रेवाड़ी के बीच मीटरगेज लाइन डबल लाइन थी, जिसमें से एक लाइन को दिसंबर-1994 में बड़ी लाइन में तथा दूसरी लाइन को वर्ष 2008 में बड़ी लाइन में बदल दिया गया। रेवाड़ी-जयपुर-अजमेर रेल लाइन का गेज परिवर्तन का कार्य वर्ष 1995 में पूरा कर दिया गया, जबकि अहमदाबाद से अजमेर तक गेज परिवर्तन पूरा होने पर मई-2007 में अहमदाबाद से दिल्ली वाया रेवाड़ी बड़ी लाइन की रेलगाड़ी शुरू हो गई थी। कुछ वर्ष बाद दिल्ली और सरायरोहिल्ला के बीच मीटरगेज लाइन को बड़ी लाइन में बदल दिया गया, जिसके कारण मीटरगेज रेलगाड़ियों का परिचालन सरायरोहिल्ला से होने लगा। वर्ष 2010 के अंत में रेवाड़ी से सभी रेल लाइनों का परिचालन बड़ी लाइन में होने लगा। इस प्रकार 2010 तक रेवाड़ी रेलवे स्टेशन न केवल भारतीय रेल का, बल्कि विश्व का सबसे बड़ा एवं सबसे पुराना मीटरगेज लाइन का जंक्शन बना रहा। इनमें से गढ़िहरसरु से फर्रुखनगर साल्ट वर्क तक की मीटरगेज लाइन को वर्ष 2004 में गेज परिवर्तन के लिए बंद कर दिया गया था तथा 2011 में इसे बड़ी लाइन में बदल दिया गया। परिवर्तन के बाद यहाँ एक बहुत बड़ा कंटेनर डिपो बनाया गया है जिससे यह और अधिक विकसित तथा सुप्रसिद्ध हो गया है। रेवाड़ी स्टेशन की स्थापना वर्ष 1873 में राजपूताना स्टेट रेलवे द्वारा की गई थी। वर्ष 1889 में यह BBCIR के अधीन चला गया तथा वर्ष 1951 में पश्चिम रेलवे में चला गया। वर्ष 1952 में उत्तर रेलवे के बीकानेर मंडल में चला गया तथा वर्ष 2002 में उत्तर-पश्चिम रेलवे के जयपुर मंडल में आ गया है। दिसंबर-2002 में यहाँ भाप इंजनों का एक बड़ा संग्रहालय खोला गया। जहाँ कई फिल्मों की शूटिंग हो चुकी है। इस प्रकार 14 फरवरी, 1873 से 14 फरवरी, 2023 तक मीटरगेज रेलवे का 150 वर्षों का सफर एक यादगार वाला दिन है। फिलहाल इस समय देश में नीलगिरी पर्वतीय रेलवे, मथुरा-वृंदावन खंड में रेल बस और भावनगर मंडल के वेरावल-देलवाड़ा, वेरावल-अमरेली-जूनागढ़ खंड में, पूर्वोत्तर रेलवे के मैलानी खंड में, पश्चिम रेलवे के डॉक्टर आंबेडकर नगर (महू)-ओंकारेश्वर रोड स्टेशन के हेरिटेज खंड में और अजमेर मंडल के मावली-मारवाड़ खंड में मीटरगेज ट्रेन चल रही हैं। स्वाभाविक रूप से देर-सबेर नीलगिरी पर्वतीय रेलवे को छोड़कर बाकी सभी खंड का भी गेज परिवर्तन कर दिया जाएगा और उसी के साथ ही बड़ी लाइन को चैलेंज देने वाली मीटरगेज का अस्तित्व हमेशा के लिए खत्म हो जाएगा।

(14 फरवरी, 1873 से 14 फरवरी, 2023 तक, गौरवपूर्ण 150 वर्ष पूरे होने के उपलक्ष्य में)

शिक्षा और समाज

समीक्षक : **कमल किशोर गोयनका**

लेखक : **गोविंद प्रसाद शर्मा**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 148

मूल्य : रु. 210/-

‘शिक्षा और समाज’ पुस्तक में आज के संदर्भ में आधुनिक दृष्टि से विचार किया गया है। डॉ. शर्मा प्रसिद्ध शिक्षाविद हैं और उच्च शिक्षा के विशेषज्ञ तथा अकादमिक ग्रंथों के रचयिता के रूप में उनकी ख्याति रही है, इस कारण इस पुस्तक का महत्व बढ़ गया है। इस ग्रंथ में 24 लेख हैं, जिनमें से कुछ ‘पुस्तक संस्कृति’ पत्रिका के संपादकीय के रूप में लिखे गए हैं, लेकिन हर लेख की स्वतंत्र सत्ता है और पाठक संपादकीयों को भी इसी भाव से पढ़ता है। उनके लेखों में विषय का वैविध्य है और प्राचीन भारतीय तथा आधुनिक पश्चिमी शिक्षा, पाठ्यपुस्तकों का स्वरूप एवं पूराग्रहों से मुक्ति, 2020 की राष्ट्रीय शिक्षा-नीति, भाषा और शिक्षा का स्वरूप, हिंदी भाषा और ज्ञान-विज्ञान का शिक्षण, बाल साहित्य, लोक संस्कृति, नारी-विमर्श, भारतीय जन-जीवन, भारत में क्रांतिकारी आंदोलन तथा गांधी और नेता जी पर गंभीरतापूर्वक, परंतु लेखक के अनुसार ‘शोधपरक’ नहीं, बल्कि ‘साधारण जन’ को ध्यान में रखकर लिखे गए हैं। इसके अधिकांश लेखों की यह बड़ी विशेषता है कि वे शोधात्मक हैं और अनेक अज्ञात तथ्यों को खोजकर सत्य का उद्‌घाटन करते हैं, लेकिन वे शोध की बौद्धिकता से मुक्त हैं और साधारण पाठक भी उन्हें सरलता से समझ सकता है और विषय से संबंधित कुछ नए तथ्य भी जान सकता है। इस पुस्तक में दूसरा लेख है—‘अंग्रेजी शासनकाल में पाठ्यपुस्तकों से भारतीय ज्ञान-परंपरा का लोप : कारण और परिणाम’। इसमें लेखक ने अंग्रेजों के आने से पहले भारत में जो शिक्षा व्यवस्था थी तथा जो विषय पढ़ाए जाते थे, उसे विस्थापित करके किस प्रकार तथा अंग्रेजों की किन नीतियों की प्रेरणा तथा प्रस्ताव पर अंग्रेजी भाषा, साहित्य तथा ज्ञान-विज्ञान को पाठ्यक्रम का अंग बनाया गया, उसका शोधपरक इतिहास इस रूप में लिखा है कि साधारण पाठक और छात्र भी उसके मर्म को आत्मसात कर सकते हैं। मुझे मैकाले की शिक्षा-नीति का ज्ञान है, पर चार्ल्स ग्रांट के 1793 की अंग्रेजी भाषा एवं शिक्षा नीति का ज्ञान इसी लेख से हुआ और मैकाले से पहले चार्ल्स ग्रांट ही पहला अंग्रेज था, जिसने भारत की प्राचीन शिक्षा-प्रणाली को नष्ट करके अंग्रेजी भाषा तथा शिक्षा-नीति का ब्रिटिश पार्लियामेंट में प्रस्ताव रखा और भारत की नई पीढ़ियों को ‘हिंदुस्तानी अंग्रेज’ बनाने की साजिश रची, जिसे मैकाले ने स्वरूप दिया और लागू किया।

इन लेखों में वैसे तो भारत के प्राचीन ज्ञान-विज्ञान की श्रेष्ठता की कई स्थानों पर चर्चा हुई है, परंतु इनमें 19वीं, 20वीं तथा 21वीं सदी के भारत की शिक्षा व्यवस्था, पाठ्यपुस्तकों की रचना, भारत की लोक संस्कृति तथा सांस्कृतिक विरासत तथा स्वामी विवेकानंद, गांधी तथा सुभाषचंद्र बोस आदि पर भारतीय चित्त एवं चेतना से विचार किया है और पूर्व एवं पश्चिम की संस्कृति तथा चिंतन एवं आदर्शों के अंतर को स्पष्ट किया है और पूर्वाग्रह से मुक्त होकर इतिहास के साक्ष्यों से अपनी बात सिद्ध की है। लेखक के अनुसार, राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 विशुद्ध रूप में भारतीय अवधारणा पर आधारित है और अब शिक्षा का गुरुत्व यूरोप नहीं, भारत का ज्ञान-विज्ञान है और भारत के लिए जो उपयोगी है, वही ग्रहणशील है। यह एक नए भारत के निर्माण की संहिता है। शिक्षा के भारतीकरण की दृष्टि से ‘विवेकानंद के शिक्षा संबंधी विचार और उनकी प्रासंगिकता’ तथा ‘उत्तर-प्रौद्योगिकी काल और मूल्य-आधारित शिक्षा’ ये दो लेख बहुत ही महत्वपूर्ण हैं और ये शिक्षा की भारतीय कल्पना के स्वरूप को रेखांकित करते हैं और लेखक की चिंतन-दिशा को भी। लेखक ने गांधी, सुभाषचंद्र बोस तथा क्रांतिकारियों के मूल्यांकन भी बड़ी तटस्थता और इतिहास के आधार पर किया है। लेखक का मत है कि भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में क्रांतिकारियों का योगदान है और गांधी को तो समग्रता में समझना होगा, क्योंकि गांधी एक व्यक्ति और एक विचार भी हैं। गांधी ने 20वीं सदी की धारा को बदला और पश्चिमी सभ्यता के विरुद्ध भारतीय आस्था एवं मूल्यों की ओर देश को उन्मुख किया। वे सनातनी हिंदू थे, धर्मांतरण के विरोधी थे, और बम (हिंसा) के विकल्प बने। गांधी असफल हुए, यह महत्वपूर्ण नहीं है, बल्कि महत्व इसका है कि उन्होंने एक नई रोशनी दी, लेकिन लेखक ने गांधी के सुभाषचंद्र बोस के साथ संबंधों का संक्षिप्त इतिहास भी दिया है। गांधी ने बोस को कांग्रेस के अध्यक्ष के रूप में स्वीकार नहीं किया और उन्हें तीन साल तक कांग्रेस के किसी पद से वंचित कर दिया गया, परंतु नेता जी ने ‘आजाद हिंद फौज’ बनाई और गांधी को ‘राष्ट्रपिता’ घोषित किया। बोस ने राष्ट्रवाद का संदेश दिया और गांधी भी उनके फौलादी संकल्पों को तोड़ नहीं पाए। इसलिए लेखक उन्हें ‘भारतीय समुराई’ कहता है तो सच ही कहता है।

इस पुस्तक के नारीवादी आंदोलन, कुंभ के मेले तथा भारतीय ऋतुओं पर लिखे लेखों की चर्चा भी जरूरी है, क्योंकि ये लेखक के भारतीय मन तथा भारत-बोध के ज्वलंत प्रमाण हैं। लेखक ने भारत की सांस्कृतिक विरासत की एक लेख में चर्चा की है और इन विषयों को भी उसी सांस्कृतिक विरासत की दृष्टि से देखा-परखा गया है। भारत के

नारी-विमर्श में फ्रांसीसी लेखिका सीमोन द बोउवार की पुस्तक 'द सेकेंड सैक्स' में प्रस्तुत नारी-विमर्श के स्थान पर भारत में 'अर्द्धनारीश्वर' की प्राचीन अवधारणा ही चल सकती है। 'भारतीय जन-जीवन और कुंभ' लेख में कुंभ मेला भारत की संस्कृति, प्रकृति, ज्ञान तथा भक्ति पर आधारित है और राष्ट्रीय एकता का प्रतीक है। वायसराय लॉर्ड हार्डिंग ने पं. मदनमोहन मालवीय से पूछा था कि इतने श्रद्धालु किसके निमंत्रण पर आते हैं जो मालवीय जी ने कहा था कि यह दो पैसे का चमत्कार है। उस समय पंचांग दो पैसे में मिलता था और उससे हर हिंदू परिवार को कुंभ की तिथि, मास, स्थान सब मालूम हो जाता था। इस मेले में करोड़ों श्रद्धालु आते हैं और विश्व में ऐसा समागम दूसरा नहीं है। इसी प्रकार लेखक ने भारतीय ऋतुओं का वैज्ञानिक तथा खगोलीय आधार स्पष्ट किया है। भारत में छह ऋतुएँ होती हैं और हम प्रकृति के साथ जीना सीखते हैं और हमारा आयुर्विज्ञान भी ऋतुओं के चक्र से जुड़ा है और हमारा जीवन भी। भारत की ऋतुओं ने भारत को विशिष्ट बनाया है और जीवन को विविध रूपों में जीने का अवसर दिया है तथा हमारी संस्कृति को समृद्ध किया है।

इस प्रकार 'शिक्षा और समाज' पुस्तक भारतीय संस्कृति तथा जीवन के इंद्रधनुषीय रंगों से सजा है। उसमें वैविध्य होने पर भी संस्कृति के एकसूत्र में बँधा है और डॉ. शर्मा ने इसे विशुद्ध भारतीय भाव से देखा, समझा एवं समझाया है। हमारा प्राचीन साहित्य एक सनातन भारतीय संस्कृति को जन्म देता है और वह निरंतर उतार-चढ़ाव के साथ आज भी प्रवाहमान है। इस पर अनेक बार संकट आए, परंतु मध्यकाल में विदेशी मुस्लिम शासकों के दमन के बावजूद भक्त कवियों ने इस सनातन भारतीय संस्कृति को जीवित रखा और अंग्रेजी शासन में भी फिर सांस्कृतिक-राष्ट्रीय लोक जागरण हुआ और भारत स्वतंत्र हुआ। 21वीं सदी के इन आरंभिक दशकों में भारतीयता का एक नया जागरण हुआ है, पश्चिमी एवं वाम दर्शन की प्रतिकूलता सिद्ध हो रही है और भारत भौतिक आत्मनिर्भरता, ज्ञान-विज्ञान तथा सनातन भारतीय मूल्यों के साथ विश्व में एक सूर्य, एक विश्व के प्राचीन दर्शन के साथ आगे बढ़ रहा है। यह पुस्तक भारतीयता की इसी भूमिका का दिग्दर्शन कराती है और यही उसकी महत्वपूर्ण सार्थकता है।

सूरदास

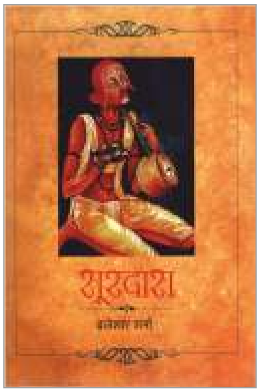

समीक्षक : **प्रमोद भार्गव**

लेखक : **ब्रजेश्वर शर्मा**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 124

मूल्य : रु. 180/-

हिंदी लेखकों की जो जीवनियाँ लिखी गई हैं, उनमें से ज्यादातर में लेखक के कालखंड की इतिहास संबंधी पृष्ठभूमि को नजरअंदाज कर दिया जाता है। इसका कारण यह भी होता है कि इतिहास और साहित्य को अधिकांश मीमांसाकार भिन्न-भिन्न विषय मानकर चलते हैं, जबकि इतिहास और साहित्य में गहरा अंतर्संबध है। इसीलिए जिन भी लेखकों ने अपने समय के इतिहास से दूरी बनाकर रचनाकर्म किया, वे कालांतर में कालबाह्य हो गए, परंतु जो लेखक समय से टकराए, अपने समय की वर्तमान घटनाओं और उनका समाज पर पड़ रहे प्रभाव का चित्रण किया, वही 'कालजयी' कहलाए। इसीलिए भक्तिकाल के कवि सूर, तुलसी और कबीर का रचनाकर्म पाँच सौ साल बीत जाने के पश्चात भी भारतीय जनमानस में अंगड़ाई ले रहा है। सिकंदर लोदी और मुगल जब हिंदू सम्राटों के राज व भूगोल पर आधिपत्य के लिए जूझते रहकर हिंदुओं पर अत्याचार और धार्मिक स्थलों की तोड़-फोड़ कर रहे थे, तब भक्तिकाल के वे सूर, तुलसी और कबीर ही थे, जो अपनी कविताओं के माध्यम से नवजागरण और धार्मिक जड़ता पर प्रहार करते हुए राष्ट्रबोध के दायित्व के प्रति आम आदमी को चेता रहे थे। इसीलिए रामचंद्र शुक्ल और बाबू गुलाबराय ने इस रचनाकर्म को भक्ति आंदोलन की संज्ञा देकर कहा भी, "भक्ति आंदोलन भारतीयों की पराजित मनोवृत्ति का परिणाम तथा मुस्लिम राज्य की प्रतिष्ठा की प्रतिक्रिया है।"

ठीक भी है, अपने पौरुष से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और करुणा की ओर ध्यान लगाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही कहाँ था? महात्मा गांधी ने यह आत्मज्ञान प्राप्त कर लिया था कि तोपों और बंदूकों से लैस अंग्रेजों से मुकाबले के लिए सबसे सशक्त कोई हथियार हो सकता है तो वह 'अहिंसा' ही हो सकता है। इसीलिए इस पुस्तक के लेखक ब्रजेश्वर शर्मा सूरदास के जन्म और उनकी साधनास्थली के विवाद में ज्यादा न पड़ते हुए, उनके जीवन और रचनाधर्मिता पर पड़ने वाली ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का उल्लेख कर सूरदास की युग-चेतना अध्याय पर आ जाते हैं। दरअसल किसी भी लेखक को हम जन्म-स्थान से नहीं, उसके लेखन के वैशिष्ट्य से जानते हैं, क्योंकि जिस लेखक में अपने युग की जटिल परिस्थितियों का यथार्थ बोध होता है, वही उनसे निपटने की चेतना का सार्थक बोध अपनी रचनाओं के माध्यम से करा सकता है। सूरदास भले ही जन्मजात अंधे थे, लेकिन उनमें अद्वितीय अंतर्दृष्टि थी। इसीलिए वे देश के राज्य, धर्म, संस्कृति, कला और अन्य क्षेत्रों में जो घनघोर उथल-पुथल व विकट हलचलें हो रही थीं, उन्हें गहराई से अनुभव कर रहे थे।

सूरदास अपनी बात आम आदमी तक तीव्रता से पहुँचाने के लिए अपनी शब्दावली में अरबी, फारसी शब्दों का प्रयोग करने में भी संकोच नहीं करते हैं। शिकार और सुरापान के बढ़ते प्रचलन की

सूरदास ने उक्त पद में जिस तरह से चिंता और रोष अभिव्यक्त किया है, उससे लगता है यह समय शेरशाह सूरी के आक्रमण, शासन और बदलती सामाजिक-राजनीतिक स्थितियों का कालखंड था। इन पदों के पढ़ने से पता चलता है कि सूरदास देश में शासन-व्यवस्था के बदलाव और व्यसन-भोग की बढ़ती प्रवृत्तियों के प्रति उद्वेलित थे। एक संवेदनशील कवि यह कैसे बरदाश्त कर सकता है कि देश परतंत्र भी हो और नागरिक चारित्रिक रूप से पतित भी हो जाएँ? सूरदास के लंबे जीवन का अधिकतम समय गोवर्धन, गोकुल, वृंदावन और मथुरा में बीता। उनका जन्म वल्लभाचार्य के जन्म से दस दिन बाद बैसाख शुक्ल पंचमी संवत् 1535 को सीही गाँव में हुआ था। सूरदास ने करीब 106 वर्ष की लंबी आयु पाई। बहुत छोटी उम्र में ही वे कुछ गरीबी, कुछ बैरागी वृत्ति के चलते घर का मोह छोड़कर संन्यासी हो गए थे। लगभग 31 वर्ष की युवावस्था में महाप्रभु वल्लभ ने सूरदास को वैष्णव संप्रदाय एवं पुष्टिमार्ग से जोड़ लिया। यहीं से सूरदास ने कृष्णलीलाओं का सृजन और गायन आरंभ किया। कृष्ण के प्रति भक्ति के इस भाव के चलते ही उन्हें कृष्ण-भक्त कवि मान लिया गया, जबकि सूरदास अपने समय के आक्रांताओं की क्रूरताओं से निरंतर रू-ब-रू होते रहे हैं। इस पुस्तक के लेखक ने सूरदास के इस राष्ट्रीय पक्ष को प्रखरता से उभारा है।

सूरदास के पदों की संख्या एक लाख से लेकर सवा लाख तक बताई जाती है। इनका संग्रह 'सूर सागर' के नाम से जाना जाता है। इसके अलावा उनके 'सूरसारावली' और 'साहित्यलहरी' ग्रंथ भी हैं। मूल रूप से उनकी भाषा ब्रज है, किंतु संक्रमण काल के कवि होने के कारण उनके पदों में अरबी और फारसी के शब्द भी समाहित हैं। चूँकि सूरदास के अधिकांश पदों पर श्रीमद्भागवत कथा व कुछ पुराणों का प्रभाव है, इसलिए वे कृष्ण की बाल-लीलाओं में इतने रम जाते हैं कि उनके अन्य विषयों पर लिखे पद गौण हो जाते हैं। कृष्ण की इन लीलाओं में बालमन की कुटिलता के जो चित्र सूरदास ने खींचे हैं, वैसे बाल मनोविज्ञान के चित्र दुनिया के किसी साहित्य में नहीं हैं। इसीलिए उनकी अंतर्दृष्टि का सभी लोहा मानते हैं।

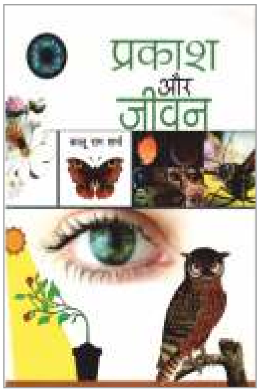

समीक्षक : **सूर्य कांत शर्मा**

लेखक : **कालू राम शर्मा**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 104

मूल्य : रु. 180/-

प्रकाश और जीवन

विज्ञान लेखक और संचारक स्व. कालू राम जी ने कुल 21 अध्यायों में आम परिवेश में मौजूद प्रकृति के प्रतिमानों के विषय में सहज, सरस और सरल अंदाज में बच्चों और किशोरों तथा युवाओं को विज्ञान और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से समृद्ध करने का सफल प्रयास किया है।

देखा जाए तो प्रकाश और जीवन दोनों एक-दूसरे के पूरक माने जाते हैं और पादप से लेकर जैवविविधता और मानव जीवन में प्रकाश का अपना ही एक अद्वितीय स्थान है। परंतु रुकिए, अंधकार का भी महत्व कम नहीं है, वरन कहीं अधिक है। जीव-जंतु, पेड़-पौधे यहाँ तक कि मानव के जीवन में भी बेहद आवश्यक है! इन्हीं जिज्ञासाओं का समाधान और कौतूहल को बढ़ाती है यह समीक्षित पुस्तक।

पुस्तक का पहला ही अध्याय प्रकाश अवधारणा पर कुछ बुनियादी बातें सरल ढंग से बताता है। यहीं से शुरुआत होती है विज्ञान के कुछ जानने योग्य प्रकाश से संबंधित बातों की। दृश्य प्रकाश के ग्राफ का रेखाचित्र और उसकी व्याख्या यथा पराबैंगनी किरणें, अवरक्त किरणें, एक्स किरणें आसानी से बालमन और किशोर मस्तिष्क को सूचित और शिक्षित करती हैं। अध्याय 'हमारी आँखें' बेहद रोचक है तथा आँख से संबंधित रोचक जानकारियाँ पढ़ते ही बनती हैं। इसी क्रम में 'जंतुओं में आँखों की स्थिति और दृष्टि क्षेत्र', 'आँख की पुतली' जैसे अध्याय बाल और किशोर मन के कौतूहल को बढ़ाकर तर्कपूर्ण ढंग से उन्हें महत्वपूर्ण तथ्यों से अवगत कराते हैं। विज्ञान तथ्यों और अवलोकन के आधार पर सटीक निष्कर्ष निकालकर पाठकों के सामने या आम जनमानस के सामने रख सकता है, जिसकी बानगी 'कौन शिकारी और कौन शिकार' नामक उप बिंदु में देखी जा सकती है यथा अकसर यह कहा जाता है कि आँखें बहुत कुछ बोलती हैं। वर्तमान शोध बताते हैं कि आँखों की पुतलियों की बनावट के आधार पर यह अंदाजा लगाया जा सकता है कि कौन शिकार है और कौन शिकारी, और यह भी कि उस जंतु की देखने की क्षमता कितनी व्यापक है। बहुधा ऊर्ध्वाधर और क्षैतिज पुतली वाले जंतु इस श्रेणी में आते हैं। इसी श्रेणी में अध्याय 'क्यों चाँद की रोशनी में वस्तुएँ रंगीन नहीं दिखती?' 'हवा क्यों नहीं दिखती' कौतूहल को चरम-सीमा पर ले जाकर बेहद सीधी भाषा में उत्तर बताते हैं।

एक रोचक अध्याय 'क्या महिलाओं में रंग की समझ अधिक होती है?', पढ़ने के दौरान एक हल्की-सी मुस्कान सभी पाठकों के मुखमंडल पर आ सकती है। जी हाँ, महिलाओं में रंग की समझ अधिक होती है! वर्णांधता रोग की पहचान और इसका जाँच ईजाद करने वाले जापानी नेत्र रोग विशेषज्ञ जनाब इशिहारा का उल्लेख भी इस अध्याय में है। वर्णांधता को पहचानने के लिए इसी जापानी नेत्र विशेषज्ञ के नाम पर जाँच का नाम 'इशिहरा' रखा गया और सर्वप्रथम सन् 1917 में यह प्रकाशित हुआ था। इसी प्रकार आगे के अध्यायों

पत्तियाँ और प्रकाश; प्रकाश, ऑक्सीजन और जीव-जगत; पौधे प्रकाश की ओर क्यों मुड़ते हैं, पाठकों को सटीक रूप से जानकारी प्रदान करने में सक्षम हैं।

एक और अविश्वसनीय, परंतु अकाट्य सत्य कि मधुमक्खियाँ परागण की प्रक्रिया में बेहद अहम और अद्वितीय भूमिका निभाती हैं। यूँ तो तितलियाँ या कीट-पतंगे भी इस प्राकृतिक क्रिया के सक्रिय घटक हैं, परंतु मधुमक्खियों के बिना यह प्रक्रिया असंभव है और इन्हीं नन्हे जीवों की बदौलत, मानव को कुल उपलब्ध खाद्य पदार्थों का अस्सी प्रतिशत मिल पाता है। मधुमक्खियों की दृष्टि गज़ब की होती है और यह वैज्ञानिक वृंद के लिए कौतूहल और चुनौती भी रही थी। इसे लगभग 100 वर्ष पहले नोबेल पुरस्कार विजेता वैज्ञानिक कार्ल फ्रिस्क ने साबित किया। पाठकों का रोमांच तब और बढ़ेगा जब वे जानेंगे कि मानव दृष्टि की तुलना में मधुमक्खियों की दृष्टि विस्तृत और विभिन्नता लिए होती है, तभी ये फूलों में मकरंद को पहचान सकती हैं। इनमें पराबैंगनी प्रकाश को देखने की अद्‌भुत क्षमता होती है। अध्याय 'मधुमक्खी रंगीन फूलों को कैसे पहचानती हैं', 'तितलियों में रंग दृष्टि और प्रकाश' कुछ ऐसे ही अलग तथ्य बताते हैं।

'जंतुओं में रंग दृष्टि' और 'प्रकाश की अवरक्त किरणों के प्रति संवेदनशील जंतु' अध्याय सहज-सरल तथ्यात्मक वर्णन प्रस्तुत करते हैं। तालिका—'कौन-कौन से जंतु कौन-कौन से रंग देख पाते हैं', और हाँ, मनुष्यों और चिंपांजियों में रंगों को देख पाने की क्षमता एक समान है! 'फूल खिलने के लिए जरूरी है अंधकार' और अन्य अध्याय 'प्रकाश प्रदूषण का जीवन पर घातक असर' अंधकार की महत्ता को रेखांकित करते हैं। एक ही पौधे पर रंग-बिरंगे फूलों का राज और भारतीय वैज्ञानिक एच.वाई. मोहन राम की खोज का उल्लेख पाठकों को गर्वित और हर्षित करने को पर्याप्त है।

एक और चौंकाने वाला तथ्य, 'क्या आप जानते हैं कि भारतवर्ष में बिजली कब आई?' पुस्तक के अनुसार, देश के कोलकाता में बिजली उत्पादन शुरू हुआ और दिल्ली में बिजली का उत्पादन, सन् 1902 में, दिल्ली दरबार को रोशन करने के लिए किया गया। उसके बाद से एल.ई.डी. बल्ब तक की कहानी सभी उम्र के पाठकों को भाएगी।

अस्तु पुस्तक सभी वर्ग के लिए पठनीय है। स्कूल कॉलेज एवं शैक्षिक वैज्ञानिक संस्थानों में यह पुस्तक संग्रहणीय स्थान को ग्रहण करने में पूर्णतया सक्षम है।

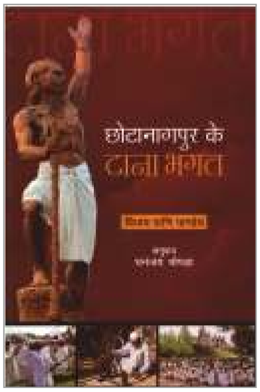

समीक्षक : **सूर्य कांत शर्मा**

लेखक : **विजय पाणि पाण्डेय**

अनुवाद : **धनंजय चोपड़ा**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 128

मूल्य : रु. 205/-

छोटानागपुर के टाना भगत

विज्ञान, साहित्य और कला जब मिलकर कोई समीकरण बनाते हैं, तो वह सबसे पहले मानव विज्ञान का रूप लेता है। परंतु मानव विज्ञान में साहित्य संस्कृति और कला केवल विज्ञान के अनुशासन में चलते हैं और मानव विज्ञान पर लिखी प्रतियाँ सर्वप्रथम प्रामाणिकता और प्रासंगिकता के साथ-साथ तथ्यात्मक वर्णन को प्रधानता देती हैं; तभी मानव विज्ञान पर सृजित मोनोग्राफ अपनी उपादेयता या साधारण शब्दों में कहें कि उपयोगिता को सच साबित कर पाते हैं। समीक्षित पुस्तक उपरोक्त वर्णित मानकों पर लिखी गई प्रतीत होती है। वस्तुतः अंग्रेजी में लिखी गई कृति का यह सहज, सरल और तथ्यात्मक अनुवाद है। हिंदी जगत के पाठकों के लिए मानव विज्ञान क्षेत्र में यह किसी अद्वितीय सौगात से कम नहीं। समीचीन संदर्भ में विज्ञान और विशेष रूप से मानव विज्ञान को राजभाषा हिंदी के अतिरिक्त मातृभाषा में भी पढ़ा जाना बेहद आवश्यक है।

यह पुस्तक एक मोनोग्राफ है जिसमें छोटानागपुर का ऐतिहासिक और भौगोलिक परिस्थितियों का वर्णन है, आदिवासी बहुल क्षेत्र में टाना भगत संप्रदाय, उराँव जनजाति के बीच एक हिंदू संस्कृति से पूर्णतया प्रभावित एक सादा जीवन-उच्च विचार वाला शाकाहारी और स्वतंत्रता आंदोलन में बेहद प्रभावी प्रतिभागी घटक रहा है। महात्मा गांधी से प्रभावित इस टाना भगत समुदाय ने अहिंसा के रास्ते भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में बढ़-चढ़कर प्रतिभागिता की और ब्रिटिश सरकार की दमनकारी नीतियों का जमकर शिकार हुए, परंतु गांधीजी प्रदत्त मूल मंत्र अहिंसा का पालन, खादी पहनना, सादा जीवन-उच्च विचार, सादा और शाकाहारी भोजन, स्वावलंबी बनकर स्वच्छता को अपनाते हुए सौहार्दपूर्ण ढंग से रहना इस समुदाय की विशेषताएँ रही हैं और आज भी कमोबेश जीवनयापन इन्हीं आधारभूत तथ्यों पर चल रहा है।

पुस्तक रूपी यह मोनोग्राफ कुल सात अध्यायों में है, तत्पश्चात इस पर गहन अध्ययन पर सटीक और सारगर्भित निष्कर्ष दिए गए हैं। संदर्भ के साथ-साथ श्री कहरू टाना भगत पुत्र श्री सोमो टाना का जीवन वृत्त इस समुदाय के जीवन संस्कृति, कार्य करने के ढंग, विचारधारा सभी को समेटता हुआ, पाठकों को एक विहंगम दृष्टि से परिपूर्ण करता है।

पुस्तक के अध्याय यथा टाना भगत संघ की उत्पत्ति और संस्थापक, सामाजिक संरचना, जीवन यात्रा संस्कार, आर्थिक संरचना, महात्मा गांधी और टाना भगत की राजनीतिक चेतना, धार्मिक संरचना (संगठन) और टाना भगतों के लोकगीत पाठकों को खोजपूर्ण डॉक्यूमेंट्री फिल्म के-से अहसास से परिपूर्ण करने में सक्षम है। यद्यपि यह पुस्तक मूलतः अंग्रेजी में पहली लिखी गई पांडुलिपि का सजीव अनुवाद है, परंतु हिंदी जगत के पाठकों को यह उपयोगी उपहार से कम नहीं लगेगी।

पुस्तक के संपादन में बहुत मेहनत की आवश्यकता होती है और इस पर भी यदि मानव विज्ञान जैसे विषय पर कोई कपोल-कल्पित गुच्छ न हो करके अनुसंधानित मोनोग्राफ हो। लेखक ने पुस्तक के परिचय में ही अपने अध्ययन के बारे में बेबाकी से लिखा है और अपने अध्ययन क्षेत्र को देवरागिनी गाँव तक सीमित रखा है क्योंकि इस गाँव में उराँव समुदाय के टाना भगतों की संख्या अधिक होना है और यह देवरागिनी गाँव बिशुनपुर ब्लॉक मुख्यालय से सात किलोमीटर दूरी पर स्थित है।

लेखक ने टाना भगत पंथ के संस्थापक जतरा भगत और छोटानागपुर पर प्रामाणिक और तथ्यात्मक जानकारी रोचक ढंग से प्रस्तुत की है। टाना भगत की सामाजिक स्थिति और महिलाओं के विषय में भी सच्चाई का पुट लिए हुए यह मोनोग्राफ भविष्य के अनुसंधान के लिए आधार शिविर की भूमिका निभा सकता है। किसी भी समुदाय की भक्ति भावना और लोकगीत, भजन या अन्य रचनाएँ, उस समाज के अधिकतर लोगों के मन-मस्तिष्क का आईना होते हैं। अध्याय 'टाना भगतों के लोकगीत' विशेष रूप से पठनीय बन पड़ा है, जिसमें लोकगीतों को ज्यों-का-त्यों प्रस्तुत करके उनका भावार्थ यानी सरल भाषा में अर्थ पाठक को इस अनुसंधानित कृति से जोड़ने में बेहद सक्षम है।

पुस्तक के अंत में टाना भगत समुदाय के बिशुनपुर क्षेत्र के स्वतंत्रता सेनानियों की सूची, टाना भगतों का विस्तार क्षेत्र घाघरा ब्लॉक, बिशुनपुर ब्लॉक, गुमला ब्लॉक, लोहरदगा जिला, भंडारा ब्लॉक, गुमला ब्लॉक जैसे स्थानों का सिलसिलेवार और सटीक ब्योरा उसके अनुसंधान की गहनता को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करते हैं।

अस्तु यह पुस्तक मानव विज्ञान को न केवल प्रश्रय देती है, वरन उसे प्रचारित-प्रसारित कर हिंदी भाषा में आगे बढ़ते रहने के गौरव से नवाजती भी है।

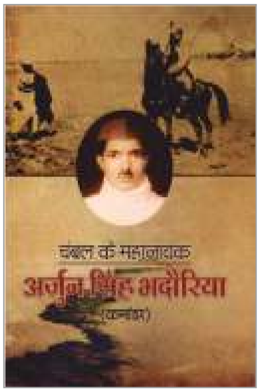

समीक्षक : **उमेश चतुर्वेदी**

लेखक : **अर्जुन सिंह भदौरिया**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 300

मूल्य : रु. 380/-

चंबल के महानायक अर्जुन सिंह भदौरिया (कमांडर)

चंबल के बीहड़ों का जब भी जिक्र होता है, सिर्फ बागियों की छवि उभरती है। आज की पीढ़ी को शायद ही पता हो कि चंबल के बीहड़ों ने आजादी के संघर्ष में बड़ी भूमिका निभाई थी। तब एक ऐसा भी क्रांतिकारी रहा, जिसने बीहड़ों में छिपकर छापामार युद्ध के जरिए अंग्रेजों की नाक में दम कर दिया था। वह शख्सियत थे कमांडर अर्जुन सिंह भदौरिया।

कुछ इसी तरह जब भी सशस्त्र क्रांति की बात होती है, वामपंथी आंदोलनकारियों का नाम सामने आता है। लेकिन कमांडर अर्जुन सिंह भदौरिया समाजवादी धारा के ऐसे सशस्त्र क्रांतिकारी थे, जिन्होंने ब्रिटिश सरकार की नाक में दम कर रखा था। आजादी के अमृतकाल में उनकी ही जिंदगी और रचनाधर्मिता पर केंद्रित पुस्तक आई है, जिसका नाम है 'चंबल के महानायक'। उत्तर प्रदेश के इटावा जिले में जन्मे अर्जुन सिंह को 'कमांडर' के रूप में महान समाजवादी नेता आचार्य नरेंद्र देव ने संबोधित किया था। उन्हें यह संबोधन मिलने की अपनी विशेष कहानी है। युवावस्था में अर्जुन सिंह भदौरिया आजादी के महान सेनानी नेताजी सुभाष चंद्र बोस से प्रभावित रहे। उनसे प्रभावित होकर अर्जुन सिंह भदौरिया ने 'लाल सेना' गठित की थी। जिन दिनों अर्जुन सिंह भदौरिया ने नौजवान क्रांतिकारियों के सहयोग से लाल सेना गठित की, उस दौर में पंजाब और बंगाल में सशस्त्र क्रांति के जरिए गुलामी की व्यवस्था को उखाड़ने की समानांतर धारा जारी थी। विशेषकर युवा वर्ग इससे प्रभावित था। चंबल में अर्जुन सिंह भदौरिया की लाल सेना ने भी कुछ वैसा ही कदम उठाया। चंबल के आस-पास के इलाकों में रेल, डाक और तार सेवाओं को ठप्प करने में लाल सेना को कामयाबी भी मिली।

पुस्तक में उस घटना का भी जिक्र है, जब अर्जुन सिंह गिरफ्तार किए गए। गिरफ्तारी के बाद उनसे तंग ब्रिटिश शासन ने उन्हें बेड़ियों से जकड़कर रखा। कमांडर पर मुकदमा चला और उन्हें 44 साल की कड़ी सजा सुनाई गई। अर्जुन सिंह जब बहुत छोटे थे, तभी उनके पिता का निधन हो गया था। उनका पालन-पोषण उनके बड़े पिता ने किया था। बचपन में अपनी माँ की बजाय वे अपनी ताई के साथ रहते-सोते थे। संयुक्त परिवार का उन्हें भरपूर स्नेह मिला।

दस अध्यायों में बँटी इस पुस्तक में अर्जुन सिंह भदौरिया के जीवन से ऐसे तमाम अनजाने पहलुओं का जिक्र है तो राजनीति की दुनिया की अनगिनत कहानियाँ भी हैं। उनके अपने कई लेख भी इस पुस्तक में शामिल हैं। अर्जुन सिंह भदौरिया ने अपने अतीत को लेकर

कुछ संस्मरण लिखे थे। इस पुस्तक में ये संस्मरण भी शामिल किए गए हैं। भदौरिया को बाद में डॉ. लोहिया और जयप्रकाश नारायण भी 'कमांडर' कहने लगे। इस पुस्तक में यह भी बताया गया है कि आजादी के बाद कमांडर भदौरिया ने क्यों कांग्रेस छोड़ी और किस तरह उन्होंने समाजवादी धारा की राजनीति शुरू की। जिस तरह इस पुस्तक को तैयार किया गया है, उसी तरह उसका कवर बनाया गया है, उससे दो तरह का भान है। एक, यह कि चंबल के महानायक की कहानी है, जिसे अर्जुन सिंह भदौरिया ने लिखा है, जिन्हें कमांडर साहब की शख्सियत की जानकारी है, पुस्तक का कवर देखकर ऐसा लगता है कि चंबल के महानायक अर्जुन भदौरिया की जीवनी है, लेकिन यह पुस्तक न शुद्ध रूप से जीवनी है और न ही उनके बारे में लिखे गए निबंधों का संग्रह है। इस पुस्तक में अर्जुन भदौरिया के बारे में भी जानकारी है, उनकी जिंदगी से जुड़ी घटनाओं का जिक्र है तो वहीं उनके लिखे संस्मरण और निबंध भी हैं। यह पुस्तक सिर्फ अर्जुन भदौरिया की कहानी नहीं है, बल्कि उस दौर के करवट लेते इतिहास की जानकारी भी मिलती है।

कमांडर अर्जुन भदौरिया की पत्नी सरला भदौरिया भी उन्हीं की तरह क्रांतिकारी विचारों की थीं। इस पुस्तक से पता चलता है कि भदौरिया दंपती के अंदर देश-प्रेम की भावना कूट-कूटकर भरी थी। देश की जनता के प्रति उनकी करुणा दृष्टि ने उन्हें जीवनपर्यंत बेचैन किए रखा।

पश्चिमी उत्तर प्रदेश में समाजवादी धारा के शिखर पुरुष रहे कमांडर अर्जुन भदौरिया आजादी के बाद 1957, 1967 और 1977 में इटावा से लोकसभा के सदस्य रहे। उनकी पत्नी सरला भदौरिया भी सांसद रहीं। इस पुस्तक से पता चलता है कि कमांडर भदौरिया का दूसरा घर जेल था। उन्होंने 52 बार जेल यात्राएँ की थीं। स्वाधीनता आंदोलन के दौरान भी उन्होंने कठोर जेल यात्राएँ कीं तो बाद में भी लोक अधिकारों को लेकर उन्हें जेल जाना पड़ा। इंदिरा गांधी ने 1975 में जब आपातकाल लगाया तो उसके खिलाफ भी उन्होंने आवाज बुलंद की, जिसकी कीमत तब उनके पूरे परिवार को चुकानी पड़ी। न सिर्फ वे और उनकी पत्नी, बल्कि उनके बेटे सुधींद्र भदौरिया को भी जेल यात्रा करनी पड़ी।

अगर आपको आजादी के पहले के चंबल के बीहड़ों की गौरव गाथा जाननी है, उस दौर में समाजवादी सोच किस तरह आगे बढ़ रही थी, आजादी के बाद समाजवादी धारा ने लोक अधिकारों को लेकर किस तरह संघर्ष किया, आपातकाल में किस तरह की यातनाएँ लोगों को झेलनी पड़ीं, समाजवादी धारा की राजनीति की विसंगतियों आदि को जानना है तो आपको यह पुस्तक पढ़नी चाहिए। राजनीति में अगर आपकी दिलचस्पी है, समाजवादी धारा के प्रति जिज्ञासा और लगाव है तो यह आपके लिए जरूरी पुस्तक है। यह पुस्तक कमांडर साहब के जीवन-संघर्ष के साथ-साथ तब के करवट लेते इतिहास का दस्तावेज भी है।

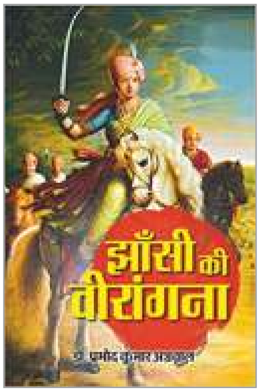

समीक्षक : **उमेश चतुर्वेदी**

लेखक : **डॉ. प्रमोद कुमार अग्रवाल**

प्रकाशक : प्रभात प्रकाशन,
नई दिल्ली।

पृष्ठ : 224

मूल्य : रु. 500/-

झाँसी की वीरांगना

इतिहास के बारे में एक कहावत कही जाती है कि वह विजेताओं का होता है। प्रथम स्वाधीनता संघर्ष में विजय अंग्रेजों को मिली थी। इसके बावजूद अगर झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई का अपना इतिहास है तो उसकी वजह भी कुछ वैसी ही है। रानी भले ही अंग्रेज सेना को परास्त नहीं कर पाई, लेकिन उसने अपने अदम्य साहस और वीरता से करोड़ों भारतीयों का हृदय जीत लिया। इसलिए उनका भी अपना इतिहास है। लेकिन इस ऐतिहासिक शख्सियत से जुड़े तमाम तथ्यों का प्रकाशित होना बाकी है।

रानी लक्ष्मीबाई की जिंदगी से जुड़े ऐसे ही कई तथ्यों को कथ्यात्मक रूप में प्रस्तुत करने की कोशिश की है मूलतः झाँसी निवासी प्रमोद कुमार अग्रवाल ने। झाँसी की वीरांगना में प्रमोद अग्रवाल ने विशेष रूप से लक्ष्मीबाई के नेतृत्व कौशल और योग्यता आधारित शासन कला को उभारने की कोशिश की है। इस रचना में झाँसी की रानी की जिंदगी की उन घटनाओं को जीवंत रूप से प्रस्तुत किया है, जिनसे उनके अदम्य साहस और वीरता उद्घाटित होती है। इस रचना को पढ़ते वक्त ऐसा लगता है, जैसे रानी आँखों के सामने उफनती बेतवा नदी को घोड़े पर बैठकर पार कर रही है। झाँसी की रानी ने जिस तरह अपने सीमावर्ती राज्य ओरछा को पराजित किया, उसका नजारा भी इस उपन्यास में खुलकर सामने आया है। इस पुस्तक में प्रथम स्वाधीनता आंदोलन के दौरान किस तरह अंग्रेज लेफ्टिनेंट डॉकर को घायल किया, किस तरह उन्होंने असहयोग कर रहे सिंधिया के ग्वालियर किले पर विजय हासिल की, वह इतिहास की अप्रतिम धरोहर है। इस रचना में रानी की जिंदगी के जुड़ी इन घटनाओं को न सिर्फ तफ़सील, बल्कि जीवंतता से उद्घाटित किया गया है।

प्रथम स्वाधीनता संग्राम में जिस तरह रानी ने युद्ध किया, उसकी सानी आज भी दी जाती है। सुभद्रा कुमारी चौहान की विश्व प्रसिद्ध रचना 'बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी, खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी' के जरिए लक्ष्मीबाई का वीरतापूर्ण चरित्र

बुंदेलखंड ही नहीं, पूरे भारतीय उपमहाद्वीप के जन-जन के दिलों में छा चुका है। रानी ने किस तरह युद्धों में अपनी तलवार से शत्रुओं के सैकड़ों सैनिकों को मारकर तथा घायल करके अपना पराक्रम दिखाया, वह उनके रणनीतिक कौशल का अप्रतिम उदाहरण है। इस रचना में रानी के व्यक्तित्व से जुड़े इन तथ्यों को भी सहजता से पिरोया गया है। रानी ने अपनी सेना में न तो जाति का ध्यान रखा, न ही धर्म का, उन्होंने सैनिक बनने के लिए उनकी पृष्ठभूमि की बजाय उनकी योग्यता का ध्यान रखा। महिलाओं को संगठित करने और स्थानीय नारी शक्ति को बुलंद बनाकर एक तरह से नारी स्वाधीनता की वैचारिकी को आधार देने की रानी की योग्यता भी इतिहास प्रसिद्ध है। इस रचना में रानी के इस गुण को भी बखूबी उभारा गया है। रानी का प्रशासन पूरी तरह विकेंद्रीकृत था। झाँसी राज्य की समृद्धि तथा राजकोषीय आय का उपयोग लक्ष्मीबाई ने सन् 1857 की क्रांति को साकार करने में किया। सच तो यह है कि अलग-अलग लेखकों ने अपने-अपने नजरिए से झाँसी की रानी का चरित्रांकन करके अपने-अपने तरीके से शाब्दिक श्रद्धांजलि दी है। कुछ इसी तरह से लेखक ने भी किया है। इस पुस्तक की शुरुआत में झाँसी का ऐसा जीवंत परिचय दिया गया है, जिसकी सानी कम ही दिखती है। ऐसा लगता है मानो झाँसी आँखों के सामने जीवंत हो चुकी है।

इस रचना में रानी लक्ष्मीबाई के जन्म से लेकर बलिदान तक की पूरी कहानी को सहजता से सुगठित रूप में समेटा गया है। रानी के विवाह, मनु से लक्ष्मीबाई बनने की यात्रा, अंग्रेजों की चाल, चेहरे और चरित्र और उसके प्रति रानी लक्ष्मीबाई की समझ का भी इस पुस्तक में जीवंत चित्रण हुआ है। इस पुस्तक को पढ़ने के बाद रानी कुशल नेतृत्वकर्ता के रूप में उभरती हैं। शायद यही वजह है कि झाँसी से बाहर की होने के बावजूद वहाँ के जन-जन के दिलों में रानी आखिरी क्षण तक बनी रहीं। इस पुस्तक से रानी का लोकतांत्रिक चरित्र भी सामने आता है। इसमें बताया गया है कि अंग्रेजों के प्रस्ताव पर लक्ष्मीबाई ने किस तरह झाँसी के सभी प्रमुख लोगों से राय ली। इस रचना में यह भी बताया गया है कि किस तरह रानी अंग्रेजों की चाल को भाँप गईं और अंग्रेजों की कुटिल चाल का जवाब देने के लिए फौरन राज्य में तैयारी शुरू कर दी। इस पुस्तक में रानी की जिंदगी से जुड़ी हर बात को बारीकी से बताने का प्रयास किया गया है। पुस्तक में जिस तरह युद्ध का नेतृत्व कर रही रानी की वीरता का रोमांचक वर्णन किया गया है, उससे पाठक भी जैसे युद्ध के रोमांच में डूब जाता है। प्रथम स्वाधीनता संग्राम के इतिहास के साथ ही रानी के चरित्र में दिलचस्पी रखने वाले रसिक पाठकों के लिए यह पुस्तक जरूरी बन पड़ी है।

भारतीय संविधान

अनकही कहानी

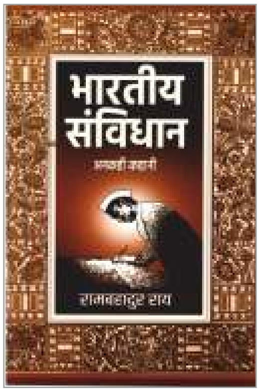

समीक्षक : **डॉ. प्रभात ओझा**

लेखक : **रामबहादुर राय**

प्रकाशक : प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।

पृष्ठ : 500

मूल्य : रु. 700/-

आजादी के 75वें वर्ष में संविधान पर एक पुस्तक आते ही बहुचर्चित हो चुकी है। पुस्तक का इस समय आना क्या महज संयोग है, यह तो स्वयं लेखक और प्रकाशक ही बता सकते हैं। पुस्तक पढ़ते हुए यह जरूर लगता है कि इस तरह के महती कार्य की अत्यंत आवश्यकता थी। हम प्रायः संविधान की दुहाई देते नहीं थकते, परंतु उसके बारे में जानते कितना हैं! यानी सर्वाधिक चर्चित मुद्दे पर न्यूनतम ज्ञान! संविधानविद् भी अपनी तरह से व्याख्या करते रहे हैं, कोर्ट-कचहरियों की रोज वाली दलीलें तो देखी-सुनी जाती ही हैं।

लेखक ने अपनी समझ के मुताबिक लिखने की विनम्रता बताई है, पर पाठक को इस पुस्तक में संविधान सभा की पूरी कार्यवाही का क्रमवार विवरण उस तरह मिलता है जैसे वह उस सभा का भागीदार हो। पुस्तक में संविधान सभा के पहले ही दिन से ऐसी कहानियाँ पढ़ने को मिलती हैं, जो इसके पहले कभी सामने नहीं आईं। पिछले कुछ समय से आज जो देशद्रोह कानून विवादों में है और जिस पर देश की सर्वोच्च न्यायालय ने भी कदम उठाया है, कितने लोग जानते हैं कि मूल संविधान में उसका क्या रूप था। यह जानना खास है कि पंडित नेहरू ने जो पहला संविधान संशोधन कराया, वह विवादित था। जिन सदस्यों ने संविधान सभा में भागीदारी की थी, वही एक साल बाद ही संविधान संशोधन में भागीदार बने। ऐसा करने वाले डोमेनियन पार्लियामेंट के सदस्य थे, जो बाद में संसद सदस्य के रूप में बदल गए। संविधान के मुताबिक वे 1952 में निवार्चित सदन गठित होने के पहले ही ऐसा कर रहे थे। इस पुस्तक के लेखक इसे असंवैधानिक संशोधन की संज्ञा देते हैं।

खूबी यह है कि लेखक श्री राय संविधान सभा की कार्यवाही के दौरान उसके सदस्यों के भाषण रखते जाते हैं और उन्हीं से पाठक के मन-मस्तिष्क में वह खाका उभरता चला जाता है, जिनमें संविधान का निर्माण हुआ। जो हुआ, कैसे संभव हो सका और जो नहीं हो सका, उसके पीछे के क्या कारण थे और कौन-से लोग थे, यह लेखक की रोचक प्रस्तुति से स्पष्ट होता चलता है। संविधान सभा की कार्यवाही किस दिन से शुरू हुई और वास्तव में उस पर काम कब से चल रहा था, यह शोध का विषय हो सकता है। लेखक रामबहादुर राय

ने इस सत्य का अन्वेषण भी किया है। वह एक रहस्योद्घाटन की तरह है। पुस्तक के तीसरे अध्याय में पढ़ने को मिलता है—“10 दिसंबर, 1946 को जवाहरलाल नेहरू ने एक प्रस्ताव पेश किया कि ‘यह सभा संविधान सभा कार्यालय के वर्तमान स्वरूप को मंजूर करती है।’ यह एक रहस्योद्घाटन था, जो उनके भाषण से प्रकट हुआ, जिसमें उन्होंने सदन को बताया कि संविधान सभा का कार्यालय कई महीनों से काम कर रहा है। ...इसे संविधान सभा की प्रक्रिया की एक महत्वहीन कड़ी माना गया। क्या वास्तव में ऐसा ही है?” लेखक तथ्य रखने के साथ सवाल करता है और पाठक उस सवाल के जवाब में स्वयं तथ्य तक पहुँच जाता है। इस उदाहरण से स्पष्ट है कि संविधान पर काम, उसकी शुरुआत की 10 दिसंबर की जिस तिथि को हम जानते हैं, उससे काफी पहले से चल रहा था। उस 10 दिसंबर के पहले कौन था संविधान सभा कार्यालय के केंद्र में, यह उत्सुकता पुस्तक के जरिए इस रूप में शमित होती है—“अंतरिम सरकार में उपाध्यक्ष पद पर विराजमान जवाहरलाल नेहरू उस सभा के सूत्रधार माने जाते हैं। वास्तव में, उस समय तो सूत्रधार वायसराय का कार्यालय बना हुआ था। नेहरू और वायसराय में कड़ी थे—बेनेगल नरसिंह राव, जिनका चयन वायसराय ने ब्रिटिश सरकार की अनुमति से किया था।” तथ्यपरक सरकारी रिपोर्ट से ही इस तथ्य को उजागर करने के बाद लेखक की टिप्पणी विचारणीय है, “संविधान का अधिकार शासक से छीना जाता है। यहाँ शासक की मर्जी और उसके बनाए नियमों में संविधान सभा बैठ रही थी।”

इस उदाहरण का आशय यह नहीं कि संविधान सभा में नकारात्मकता ही रही। गुलाम भारत और उसकी स्वतंत्रता के संक्रमण काल में जिस संकल्प और आमजन के हित को ध्यान में रखते हुए संविधान निर्माण पर बहस चल रही थी, उससे तब की चिंता को समझा जा सकता है।

इस नई पुस्तक की लेखन प्रक्रिया में खोजी पत्रकार की दृष्टि देखी जा सकती है। दस खंडों में संसद के पुस्तकालय-संग्रहालय में मौजूद ‘भारतीय संविधान सभा के वाद-विवाद की सरकारी रिपोर्ट’ के बारे में जब अधिकतर जन प्रतिनिधि भी अनजान हों, उसमें लेखक ने गहरी पैठ बनाई है। इसके साथ ही श्री राय ने बड़ी संख्या में संविधान संबंधी देशी-विदेशी विद्वानों की पुस्तकों से भी संदर्भ लिए हैं। ऐसे में ये तथ्य प्रामाणिक रूप से सामने आए हैं कि किस तरह सरदार वल्लभ भाई पटेल ने संविधान सभा के मुस्लिम सदस्यों को मुसलमानों के लिए पृथक निर्वाचन प्रणाली समाप्त करने पर सहमत कराया। यह तो एक उदाहरण भर है।

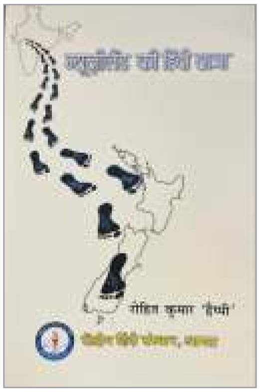

समीक्षक : **प्रीता व्यास**

लेखक : **रोहित कुमार ‘हैप्पी’**

प्रकाशक : केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा।

पृष्ठ : 146

मूल्य : रु. 140/-

न्यूज़ीलैंड की हिंदी यात्रा

हिंदी का नाम विश्व की सबसे बड़ी भाषाओं में तीसरे स्थान पर आता है। पिछले 50 वर्षों में इसके बोलने वाले भी बढ़े हैं और इसकी अपनी शब्द संपदा भी बढ़ी है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिंदी की जो वर्तमान स्थिति है, उसकी मजबूती के पीछे अपनी भूमि से दूर जा बसे प्रवासी लेखकों और हिंदी पठन-पाठन को प्रोत्साहित करने वाले भाषा-प्रेमी जनों का योगदान महत्वपूर्ण है। जहाँ-जहाँ (देशों या द्वीपों में) भारतवंशी जाकर बसे, वहाँ-वहाँ उन्होंने हिंदी की अलख जगाई। भारत की आज़ादी के बाद दुनिया भर में हिंदी को जो मान्यता मिली, वह अनेक भाषाओं के लिए स्वप्न ही है।

ऑकलैंड, न्यूज़ीलैंड में निवास कर रहे लेखक, पत्रकार, डिजिटल दुनिया के सिद्धहस्त और विश्व की पहली हिंदी वेब पत्रिका ‘भारत दर्शन’ के संस्थापक/संपादक रोहित कुमार ‘हैप्पी’ की इस सद्यप्रकाशित पुस्तक ‘न्यूज़ीलैंड की हिंदी यात्रा’ में सन् 1930 से लेकर 2021 तक की, यानी लगभग 90 वर्षों की हिंदी की इस दूर देश, न्यूज़ीलैंड में हुई यात्रा का हवाला है। मेरा मानना है कि पुस्तक को पढ़ने पर विस्मय और गर्व की मिली-जुली अनुभूति होना स्वाभाविक है।

पुस्तक में इस बात का उल्लेख मिलता है कि न्यूज़ीलैंड पर लिखा गया सबसे पहला आलेख—‘न्यूज़ीलैंड में जीवन’ डॉ. बलवंत सिंह शेर ने लिखा था जो ‘विशाल भारत’ में प्रकाशित हुआ था। ‘विशाल भारत’ अपने समय का प्रसिद्ध हिंदी प्रकाशन था जो 1928 में कलकत्ता से आरंभ हुआ था। रामानंद चट्टोपाध्याय इसके संस्थापक थे और बनारसीदास चतुर्वेदी इसके पहले संपादक। ‘विशाल भारत’ ने प्रवासी भारतीयों के लिए भी एक सुदृढ़ मंच की तरह कार्य किया था। इस एक लेख से शुरू हुई यात्रा का स्वरूप कब, कैसे बढ़ता, बदलता रहा इसका सारा ब्यौरा इस पुस्तक में मिलता है।

इस यात्रा का ब्यौरा इस बात का प्रमाण है कि लेखक ने अपने शोध के श्रम में कोई कोताही नहीं बरती और यह यात्रा इस बात का प्रमाण है कि अंग्रेज़ीपरस्त माहौल में भी लोगों ने अपनी भाषा को न सिर्फ अपनाए रखा, बल्कि उसके प्रसार के लिए सतत काम भी किया और अब भी कर रहे हैं। अपनी भाषा के प्रति इस आत्मीय लगाव की पृष्ठभूमि ही है जो कहीं-न-कहीं हमारी सांस्कृतिक और संस्कारगत एकता का आधार बनती है।

पुस्तक के आरंभ में अपने समर्पण में अपनी बात स्पष्ट करते हुए लेखक लिखता है—“कथ्य सरल, सुलभ है, तथ्य खोजने पड़ते हैं, लेकिन शोध तथ्य पर आधारित होता है, कथ्य पर नहीं। कथ्य को सत्य की कसौटी पर परखकर तथ्य उजागर करना किसी भी शोधार्थी और खोजी पत्रकार का कर्तव्य होता है। आवश्यक नहीं कि जो दिखाई देता हो, वह यथार्थ हो और यह भी सदैव नहीं होता कि यथार्थ सरलता से दिखाई पड़े। न्यूज़ीलैंड में हिंदी कर्म और श्रम करने वाले व्यक्तियों व संस्थाओं, जिनमें कुछ मौन साधक भी सम्मिलित हैं, को मुखर करने हेतु यह पुस्तक एक नन्हा-सा प्रयास है।”

इस पुस्तक में न्यूज़ीलैंड में हिंदी को लेकर हो रहे कार्यों का समग्र ब्यौरा है, चाहे वह पत्रकारिता हो, लेखन हो, अध्यापन हो, विश्वफलक पर प्रतिनिधित्व हो, आयोजन हों या पर्यटन और फिल्मों की बात हो। कुल मिलाकर यह पुस्तक अपने आप में संग्रहणीय दस्तावेज़ है।

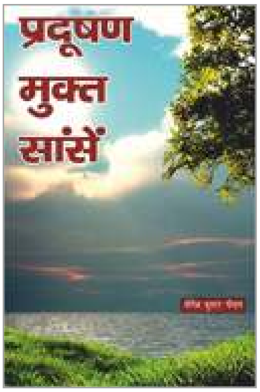

समीक्षक : **हरिसुमन बिष्ट**

लेखक : **योगेश कुमार गोयल**

प्रकाशक : मीडिया केयर नेटवर्क, नज़फगढ़, नई दिल्ली।

पृष्ठ : 190

मूल्य : रु. 260/-

प्रदूषण मुक्त साँसें

मनुष्य और पर्यावरण के बीच गहरा संबंध है। यूँ तो धरती, जल और आकाश में विचरण करने वाले सभी जीव पर्यावरण से विलग नहीं रह सकते, सभी पर्यावरण से सामंजस्य स्थापित करते हैं, किंतु मनुष्य ही एक ऐसा जीव है, जिसका संसर्ग जितना धरती से है, उतना ही आकाश से और जितना जल से है, उतना ही अग्नि और वायु से भी है। इन पंचतत्वों से निर्मित, वायुमंडल, जलमंडल, स्थलमंडल और जीवमंडल जो कि पर्यावरण के मुख्य घटक हैं, से किसी भी तरह की छेड़छाड़ जलचर, नभचर के जीवन को प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से प्रभावित करती है। उनमें भी मनुष्य जीवन को सबसे अधिक प्रभावित करती है, क्योंकि मनुष्य ही एक ऐसा जीव है जो सबसे अधिक स्वार्थी है। वह अपनी जरूरत की पूर्ति के लिए सबसे अधिक प्रकृति का दोहन और उसे नियंत्रित करने की कोशिश करता रहता है, किंतु प्रकृति है कि वह मानती नहीं। जब वह अनियंत्रित होती है तो क्रुद्ध होकर अपना विकराल रूप दिखाने लगती है, जिसके परिणामों को जब-तब हम उसके क्रूरतम रूप में देख रहे हैं। फिर भी, धरती में मौजूद तमाम जीवों में सबसे अधिक समझदार, जीवों में श्रेष्ठ माने जाने वाले, सबसे अधिक जागरूक मनुष्य है, वह उससे कुछ सीख नहीं रहा है। दिनोंदिन भयावह बनती यह स्थिति एक चिंता का विषय बनती जा रही है।

विश्व का पर्यावरण दूषित हो चुका है। आधुनिकीकरण और औद्योगीकरण के चलते प्रकृति के साथ खिलवाड़ करने की जैसी होड़ विश्वभर में चल रही है, जिसके परिणामस्वरूप भयानक तूफ़ान, बाढ़, सूखा, भूकंप जैसी प्राकृतिक आपदाएँ बढ़ रही हैं। एक से बढ़कर दूसरी गंभीर बीमारियाँ मानव जीवन को लील रही हैं। बरफ से ढके पहाड़ तपने लगे हैं, ग्लेशियर पिघलने लगे हैं, जिससे जल संकट गहराता जा रहा है। नदियाँ कारखानों के कचरे से प्रदूषित हो रही हैं। नदियों की चंचलता को विशाल बाँध बनाकर रोक दिया है। जलचर का जीवन घोर संकट झेल रहा है।

हमारे जीवन में शांति की जगह पर बेचैनी बढ़ रही है। जीवन में विनाशकारी प्राकृतिक आपदाओं की हलचल तेज हो गई है। जीवन चारों तरफ से घिरता जा रहा है। जलवायु परिवर्तन एक विकराल समस्या का रूप ले रही है। धरती का तापमान बढ़ता ही जा रहा है। जगलों में आग से तबाही का ग्राफ बढ़ता ही जा रहा है। जंगलों की हरियाली ख़त्म हो रही है। जंगली जीवन जल-भुनकर ख़त्म हो रहा है। ऑक्सीजन की ठौर पर कार्बन गैसों का उत्सर्जन प्रतिशत बढ़ रहा है। हमारे देश में जितना महत्व वनों का रहा है, उतना ही बल्कि, उससे अधिक महत्व हिमालय का रहा है। वनों से कहीं अधिक प्राणवायु हमें हिमालय से ही मिलती है। हिमालय को भी प्रदूषित करने में हमने कोई कमी नहीं छोड़ी है। प्लास्टिक के कचरे को हमने पवित्र गंगा के उद्गम स्थल गोमुख तक पहुँचा दिया है। हिमालय की ऊँची-ऊँची चोटियों में भी कचरे का अंबार लगने लगा है। सड़कों का अंधाधुंध निर्माण, भवन निर्माण के लिए पहाड़ों को जिस तरह क्षतिग्रस्त किया जा रहा है, उससे पहाड़ दरकने और रिरियाकर टूटने लगे हैं। देश में कहीं सूखा तो कहीं नदियों में बाढ़ का प्रकोप बढ़ता ही जा रहा है। आकाशीय बिजली का गिरना, बादलों का फटना अब आम बात होती जा रही है। इससे जीवन की बड़ी क्षति हो रही है। इसके बढ़ते प्रकोप को देखने के बावजूद आधुनिक विकास का हथौड़ा रुक नहीं रहा है।

प्रस्तुत पुस्तक में जीवन में बढ़ती चिंताओं को बहुत बारीकी और विस्तार से बताया गया है। प्रकृति को न बचा पाने पर दुष्परिणामों की चेतावनी भी दी गई है। एक तरह से प्रकृति बार-बार अपनी मूक भाषा में चेतावनियाँ देकर हमें सावधान कर रही है कि स्वच्छ और बेहतर जीवन के लिए पर्यावरण का संरक्षण जरूरी है। हम प्रकृति के इन मूक संकेतों को गंभीरता से समझना होगा। धरती की नैसर्गिक सौंदर्यता को संजोकर रखना होगा और गंभीरता से विचार करना होगा कि जीवन अनमोल है। उसे जीने का नैसर्गिक अधिकार प्राप्त है, इसलिए हर व्यक्ति और हर सरकार का दायित्व है कि धरती से जीवन के उठने से पहले आधुनिकता की उस अंधी दौड़ में शामिल होने से कहीं अधिक धरती में जीवन बचा रहे, इसके लिए नए प्रयास करने होंगे। पर्यावरण बचा रहेगा तो जीवन बचा रहेगा।

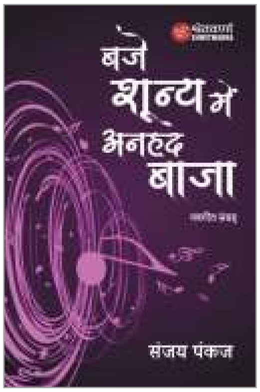

समीक्षक : **चैतन्य चेतन**

गीतकार : **संजय पंकज**

प्रकाशक : श्वेतवर्णा प्रकाशन, नई दिल्ली।

पृष्ठ : 128

मूल्य : रु. 249/-

बजे शून्य में अनहद बाजा

(नवगीत संग्रह)

'अरे यहाँ तो सब बंजारे, कहाँ किसी का नीड़ है' जैसा स्थायी मूल्यबोध का लोकप्रिय गीत लिखने वाले सुपरिचित गीतकार संजय पंकज का 'शब्दों के फूल खिले' के बाद अभी-अभी आया है ताजातरीन बेहतरीन गीत संग्रह 'बजे शून्य में अनहद बाजा'! इसकी ताजगी शिल्प और छंद में तथा बेहतरी कहन के अंदाज में देखने योग्य है। गीत की एक अंगड़ाई—'बजे शून्य में अनहद बाजा, सुन रे भाई!/उसमें रहता अपना राजा, सुन रे भाई!' है तो दूसरी भाव-अंगड़ाई में—'सुन रे भाई!/धरा सुहानी आफत आई, सुन रे भाई!/तू तो परजा लोक लुगाई, सुन रहे भाई!/' अपने अर्थ-संकेत में पूरी तरह से बदल जाती है।

संग्रह का नाम आकर्षित करता है और चौंकाता भी है। हद के पार जाता हुआ यह अनहद हमें कबीर के पास 'धू-धू करती दुनिया जलती, सब के सब सोए/जंगल पर्वत झील नदी के, सपनों में खोए/अपनी साखी में सागर को, कब तक तोलेगा!/चुप हो जा चुप हो जा साधो, कब तक बोलेगा!' तो ले ही जाता है; कभी-कभी वैदिक ऋषि-कवियों का भी ध्यान दिला देता है—'काँटों बिंधे समय के अक्षर, आओ रचे ऋचाएँ/जड़ संवेदन के जंगल में, आओ फूल खिलाएँ!' कई-कई प्रवृत्तियों के गीतों से संपन्न यह काव्य-पुस्तक वाद-विवाद से सर्वथा पृथक एक सच्चे और स्वच्छंद कवि की उन्मुक्त उड़ान है। उड़ान की अलग-अलग दिशाएँ हैं। बहुवर्णी गीतों की भाव सघनता में लय की लुनाई और खुशबू की नई तथा मोहक उड़ान अभिभूत करती है।

कवि संजय पंकज की सृजनात्मकता, कल्पनाशीलता और रचनाधर्मिता के समर्थ प्रमाण देते संग्रह के 55 गीत 11-11 के समूहों में अपने-अपने विषय के अनुसार अलग-अलग शीर्षकों के विशिष्ट अनुशासन के अधीन हैं। गीत-नवगीत के क्रम—अजब कहानी इस मानुष की, हवा सुरीली है, गाता पारावार हमारा, यहाँ सभी के गणित अलग हैं, चिड़ियों के सुर में गाना, जैसे पाँच नामों से अभिहित पाँच उँगलियों की गठजोड़ कसी मुट्ठी की मानिंद 'बजे शून्य में अनहद बाजा' संग्रह में क्रमशः है।

गीतों के विषय वैविध्य में प्रेम, प्रकृति, संघर्ष, विश्वास, संबंध, राजनीति, संस्कृति, समाज तथा अध्यात्म स्वाभाविक रूप से प्रस्तुत हुए हैं। यह सब-कुछ अनायास लगता है। ऐसा कहीं आभास भी नहीं होता है कि गीतकार ने अपनी तरफ से कुछ जबरदस्ती करने का प्रयास किया है। नदी के प्रवाह की तरह गीतों में एक स्वाभाविक बहाव है। वसंत और बरसात कवि के प्रिय मौसम हैं। ऋतु केंद्रित गीतों में भी प्रेम और सौंदर्य के सहज तथा निश्छल भाव मोती की मानिंद चमकते हैं।

युगानुरूप गीत की भाषा बदलती रही है। कथ्य में भी समय का उतर आना अस्वाभाविक नहीं है। कुछ मूल्य बदलते हैं फिर भी कुछ मूल्य शाश्वत और स्थायी होते हैं। गीत बदलते हुए मूल्यों के बीच भी संस्कृति को बचाए रखने का एक बड़ा रागात्मक प्रकल्प है। संजय पंकज गीतों में पारंपरिक स्वर और गंध से परहेज नहीं करते हैं। भावावेग में जो आ रहा है, उसे वे अवरुद्ध भी नहीं करते हैं, बल्कि उसे अभिव्यक्ति के सलीके में नई ताजगी और ऊष्मा प्रदान करते हैं। इसलिए संग्रह के सारे-के-सारे गीत नवगीत ही हैं, ऐसा नहीं कहा जा सकता है, लेकिन गीत-चेतना और गीत की शर्त से संपन्न हर गीत हैं। अनावश्यक प्रयोग के संजाल में गीतों को फँसने से कवि ने बहुत ही कुशलता से बचा लिया है। नवगीत की छांदसिक त्रुटियाँ और कतिपय विश्रृंखलताएँ कवि को स्वीकार्य नहीं; तभी तो छंद की कसौटी पर सारे गीत अपने मात्रात्मक अनुशासन का पालन करते हैं। समय की जटिलताओं से बचने का गीतकार ने किसी भी गीत में प्रयास नहीं किया है, बल्कि सामाजिक विसंगतियों पर खुले तौर पर इस नवगीत में उसका क्रांत स्वर मुखर है—'हवा दिशाएँ धरती अंबर होते सबके/फसल उगाए काटे कोई बोते कब के/कहीं उजाला और कहीं फिर गहरा तम है!/छोटा जीवन जंजाल बहुत जीना कम है!' सबके बावजूद इन गीतों में मानवीयता और समरसता के विचार-आलोक सराहनीय और अनुकरणीय हैं।

संग्रह के गीतों में मिट्टी की रंगत, पसीने का खारापन, आकाश का फैलाव, दिशाओं की उत्फुल्लता, माँ की ममता, बच्चों की हँसी, पिता की चुप्पी, परंपरा की निष्ठा, जीवन के उतार-चढ़ाव और मानवीय संघर्ष, जैसे अनेक विषय, संदर्भ, संबंध और संस्कृति सन्निहित हैं। कवि का स्वर आशावादी है। वह पूरे विश्वास से वातावरण और प्रकृति को अपने अनुकूल देखता है।

सतत गतिशीलता और सरल प्रेमिल व्यवहार के आग्रही इस कवि की आकर्षित करने वाली बड़ी खूबी यह है कि वह कहीं किसी जड़ प्रतिबद्धता और कट्टर वैचारिकता में जकड़ा हुआ नहीं प्रतीत होता है। उन्मुक्त उड़ानें भरने वाले इस कवि की आशावादिता गीत-कविता में फिर से लौट आने का आह्वान करती हैं और जिजीविषा जगाती हैं।

समीक्षक : **डॉ. प्रेमलता मिश्रा**

लेखक : **प्रियदर्शन**

प्रकाशक : सेतु प्रकाशन, दिल्ली-110092

पृष्ठ : 152

मूल्य : रु. 180/-

दुनिया मेरे आगे

एक लेखक केवल शब्द से संसार नहीं रचता, उसका निजी व्यवहार, अन्य लेखकों के प्रति उसका नजरिया और दूर तक चलते रिश्ते उसकी सृजनात्मक दुनिया के मूल में होते हैं। राँची जैसे सुदूर शहर से आकर प्रियदर्शन ने जब पत्रकारिता के जरिये साहित्य की दुनिया में जगह बनाने के प्रयास किए तो हिंदी के कई नामचीन बड़े लेखक उनके संपर्क में आए। उनकी यादें, उनके साथ बिताया गया समय और उस लेखक का मानवीय पहलू इन सब यादों को जोड़कर लिखी गई यह पुस्तक यादों का गुलदस्ता और लेखक का ऐसा रेखाचित्र है जो पाठकों और लेखकों को बताता है कि उनका प्रिय लेखक निजी जीवन में किन संघर्षों से गुजरता है।

लेखक सुश्री गगन गिल का साक्षात्कार लेने उनके घर गए, दरवाजा खोला निर्मल वर्मा ने और उनके कोई बात नहीं हुई। तीन घंटे लेखक व गगन जी की बात चलती रही और निर्मल वर्मा भीतर के कमरे में बैठे रहे। विमर्श के बाद प्रियदर्शन उनके घर से निकलते हैं तो पाते हैं कि बाहर घनघोर बरसात है और निर्मल जी की गली में घुटनों पानी। टीवी समाचार को नए तेवर देने वाले एस.पी. सिंह एक स्मृति, एक सरोकार और कई सवाल को पढ़ने पर इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की विश्वसनीयता पर आज उठ रहे कई सवालों के संदर्भ में एस.पी. प्रासंगिक हो उठते हैं। वह जैसे ही पानी में अपना पैर रख भीगते हुए जाने को निकलते हैं, निर्मल जी उनका हाथ खींचकर फिर से ऊपर ले जाते हैं और शुरू होती है एक नई रिश्ते ही गर्माहट। राजेंद्र यादव के तेजतर्रार तेवर, विष्णु खरे के विवाद, अनुपम मिश्र की सौम्यता, अरुण कुमार पानीबाबा का रसोई प्रेम, प्रभाष जोशी का संपादकत्व, राजकिशोर की निजी मदद। महाश्वेता देवी, रमणिका गुप्ता, पत्रकार आलोक तोमर और पंकज सिंह, नामवर सिंह, अर्चना वर्मा—इन सभी की यादों को पुस्तक में समेटा गया है।

सबसे रोचक है आखिरी अध्याय, वह पाँचवाँ दोस्त चला गया, अर्थात जगजीत सिंह, गजल गायक। उनसे लेखक की कभी मुलाकात नहीं हुई, लेकिन उनके सृजन संसार में उनकी आवाज एक सहयात्री रही।

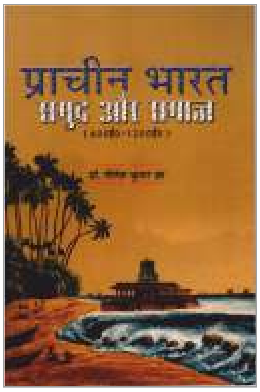

समीक्षक : **डॉ. प्रेमलता मिश्रा**

लेखक : **डॉ. नीलेश कुमार झा**

प्रकाशक : पुस्तक पथ, वाराणसी।

पृष्ठ : 256

मूल्य : रु. 350/-

प्राचीन भारत
समुद्र और समाज

भारत के व्यापारी, यात्री और साम्राज्य सदियों से समुद्री मार्ग और उसके महत्व को जानते-समझते थे। जहाँ एक ओर समुद्रमार्ग से सुदूर देशों से व्यापारिक संबंध थे वहीं देश के भीतर भी एक-दूसरे शहरों में आवागमन और व्यापार के लिए नदियों का इस्तेमाल होता था। चूँकि हमारा देश तीन तरफ से समुद्र सीमा से सुरक्षित है अतः समाज का उसके प्रति संवेदनशील होना स्वाभाविक ही है। उत्तर में लंबा समुद्र तट भी है। भारत के पश्चिम बंगाल, ओडिशा, केरल, तमिलनाडु, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, गोवा आदि राज्य समुद्र तट से जुड़े हैं।

हमारी प्राकृतिक संपदा, बहुमूल्य खनिज के साथ-साथ वस्त्र, आभूषण, मसाले और हस्तशिल्प पूरी दुनिया को आकर्षित करते रहे हैं। हमारे देश के समुद्री इतिहास का अध्ययन करने से इस बात का पता चलता है कि ईसा पूर्व कई सौ सालों से लेकर 13वीं शताब्दी तक महासागर पर भारतीय उप महाद्वीप का वर्चस्व कायम रहा। यह पुस्तक छठी से 12वीं सदी के बीच भारत में समुद्र की विभिन्न गतिविधियों का शोध प्रस्तुत करती है। इसका पहला अध्याय उस काल में भारत की भौगोलिक स्थिति और विभिन्न साम्राज्यों के अधिकार क्षेत्र, उनके व्यापारिक, भूराजनीतिक परिदृश्य और सामरिक क्रियाकलापों पर प्रकाश डालता है। हर्ष के काल में शहरीकरण और विपणन पर विभिन्न चीनी यात्रियों के संस्मरण के आधार पर भव्यता का बखान चकित करता है।

'समुद्री व्यापार के साधन' अध्याय में नाविकों के महत्व, उस समय बंदरगाह की स्थापना, समुद्र तटों के पास मंदिरों की भव्यता और माल ढोने की विधियों पर प्रकाश डाला गया है। बाणभट्ट ने हर्ष के काल में दक्षिण-पूर्व एशिया में समुद्री व्यापार का उल्लेख किया है। उन्होंने चमड़े की बनी 'कर्दरंग ढाल' पर बात की है जो इंडोनेशिया के एक द्वीप में मिलती थी। पुस्तक केवल दक्षिणी राज्यों के सुमद्र तटों पर व्यापारिक गतिविधियों की ही चर्चा नहीं करती, इसमें बंगाल के शासकों के सुदूर व्यापारिक यात्राओं के भी प्रमाण दिए गए हैं।

पुस्तक के प्रत्येक अध्याय में लंबी संदर्भ सूची है जो दर्शाती है कि लेखक ने बेहद श्रम से तथ्यों को एकत्र कर उनकी विवेचना की है।

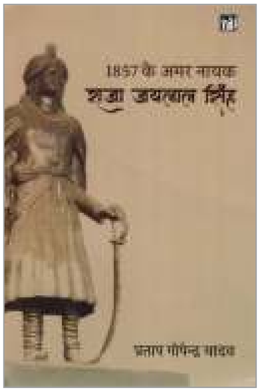

समीक्षक : **प्रमोद कुमार**

लेखक : **प्रताप गोपेन्द्र यादव**

प्रकाशक : लोकभारती पेपरबैक्स, प्रयागराज।

पृष्ठ : 168

मूल्य : रु. 250/-

1857 के अमर नायक राजा जयलाल सिंह

आज 01 अक्तूबर, 2022 को 19वें राष्ट्रीय पुस्तक मेले, लखनऊ में लोकभारती पेपरबैक्स प्रकाशन, प्रयागराज द्वारा प्रकाशित प्रताप गोपेन्द्र यादव की पुस्तक '1857 के अमर नायक जयलाल सिंह' का विमोचन संपन्न हुआ। 01 अक्तूबर के दिन 163 वर्ष पूर्व राजा जयलाल सिंह को ब्रिटिश सरकार ने फाँसी दी थी। 30 जून, 1857 को लखनऊ के निकट चिनहट के युद्ध में अवध के रेजिडेंट को पराजित कर 1857 के विद्रोहियों ने लखनऊ पर अधिकार कर लिया तथा रेजीडेंसी में शरण लिए अंग्रेज परिवारों व अंग्रेजी सेना की घेरेबंदी प्रारंभ कर दी थी। 01 जुलाई, 1857 से लेकर 24 मार्च, 1858 तक जब तक लखनऊ पर अंग्रेजों का अधिकार नहीं हो गया, लखनऊ नगर के प्रशासन तथा विद्रोह के संचालन में राजा जयलाल सिंह ने बेगम हजरत महल, मौलवी अहमद उल्लाह तथा अन्य विद्रोही सेनाधिकारियों के साथ महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया था।

इस पुस्तक के लेखक प्रताप गोपेन्द्र यादव, आई.पी.एस., एक प्रशासक हैं तथा वर्तमान में प्रयागराज के चतुर्थ वाहिनी पी.ए.सी. के सेनानायक हैं। 1982 में जन्मे प्रताप गोपन्द्र यादव ने 'फत्तनपुर : मेरा गाँव मेरे लोग', 'मारिच पथ' (कहानी संग्रह) एवं 'इतिहास के आइने में आजमगढ़' नामक पुस्तकों की रचना की है। '1857 के अमर नायक जयलाल सिंह', उनकी चौथी पुस्तक है।

भूमिका, पूर्वपीठिका, परिशिष्ट व संदर्भ ग्रंथ सूची के साथ-साथ कुल छह अध्यायों में विभाजित प्रस्तुत पुस्तक 1857 के विद्रोह में अवध व लखनऊ के योगदान पर महत्वपूर्ण व इतिहासपरक जानकारी प्रवाहमयी, वाग्मितापूर्ण सुपाठ्य, भाषा-शैली में प्रस्तुत करती है।

इस पुस्तक के प्रथम अध्याय 'वंश-परिचय' में राजा जयलाल सिंह के पिता दर्शन सिंह तथा उनकी कुर्मि जाति में उद्गम और अवध क्षेत्र में कुर्मि जाति के सघनतम इलाकों व 1931 की अंतिम जातिगत जनगणना के अनुसार उनकी जनसंख्या का वर्णन प्रदान किया गया है। इसी पुस्तक के पाँचवें अध्याय में राजा जयलाल सिंह के परिवार का वंश-वृक्ष भी दिया गया है, जो उनके वर्तमान वंशजों से प्राप्त किया गया है। इस पुस्तक का दूसरा अध्याय राजा दर्शन सिंह, 'गालिबजंग' में राजा जयलाल सिंह के पितामह गरीबदास व पिता दर्शन सिंह के लखनऊ आने, लखनऊ के प्रथम नवाब सादत अली खाँ के संपर्क में आने तथा उसके उत्तराधिकारी गाजीउद्दीन द्वारा सरदार बनाने तथा उसके उत्तराधिकारी नसिरुद्दीन द्वारा 'गालिबजंग' की उपाधि पाने आदि का विवरण प्रदान किया गया है। इस अध्याय में राजा जयलाल सिंह के पिता दर्शन सिंह गालिबजंग के 1807 से लेकर 1851 में उनके मृत्यु तक के काल की महत्वपूर्ण घटनाओं को सम्मिलित किया गया है। लेखक ने इस पुस्तक के तीसरे अध्याय 'राजा जयलाल सिंह', में 30 जून, 1857 को लखनऊ के निकट चिनहट के युद्ध में विद्रोहियों की विजय, छह दिन तक चलने वाली लखनऊ की लूट से लेकर 01 अक्तूबर, 1859 को राजा जयलाल सिंह की फाँसी तक लखनऊ के विद्रोह में राजा जयलाल सिंह के योगदान पर केंद्रित किया है। 24 मार्च, 1858 तक ईस्ट इंडिया कंपनी ने पुनः लखनऊ पर अधिकार कर लिया था तथा रेजीडेंसी की घेरेबंदी से मुक्ति प्राप्त कर ली थी। सितंबर 1857 में ही दिल्ली को भी ईस्ट इंडिया कंपनी ने मुक्त करा लिया था। इसके पश्चात 01 नवंबर, 1858 को ईस्ट इंडिया कंपनी का शासन समाप्त कर ब्रिटिश सम्राट का शासन प्रारंभ हो चुका था।

इसी अवसर पर इंग्लैंड की महारानी विक्टोरिया ने अपनी घोषणा में यह घोषित कर दिया था कि 01 जनवरी, 1859 तक जो भी विद्रोही हथियार डालकर आत्मसमर्पण कर देगा और जिसने किसी अंग्रेज अथवा यूरोपीय की हत्या नहीं की होगी, उसे क्षमा प्रदान कर उसकी संपत्ति को वापस कर दिया जाएगा। इस घोषणा के साथ ही विद्रोही सामंतों में आत्मसमर्पण करने की होड़ मच गई। आत्मसमर्पण कर विद्रोह में सम्मिलित सामंत अपनी जब्त भू-संपत्तियों को प्राप्त करने लगे और विद्रोहियों को फाँसी अथवा आजीवन काले पानी की सजा मिलने लगी, परंतु राजा जयलाल सिंह ने न आत्मसमर्पण किया था और न ही हथियार डाला था। परिणामस्वरूप उन्हें जून-1859 में बंदी बनाकर 01 अक्तूबर, 1859 को फाँसी दे दी गई थी।

प्रस्तुत इतिहासकार ने इस पुस्तक की रचना रिजवी व भार्गव द्वारा संपादित 'फ्रीडम स्ट्रगल इन उत्तर प्रदेश', राजकीय अभिलेखागार प्रयागराज में उपलब्ध राजा जयलाल सिंह के मुकदमे की फाइल तथा कुछ अन्य प्राथमिक स्रोतों तथा तमाम द्वितीयक स्रोतों के आधार पर की है। निस्संदेह, प्रताप गोपेन्द्र यादव की प्रस्तुत रचना ज्ञान के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण योगदान है।

आज़ादी के अनोखे व रोमांचक प्रसंग

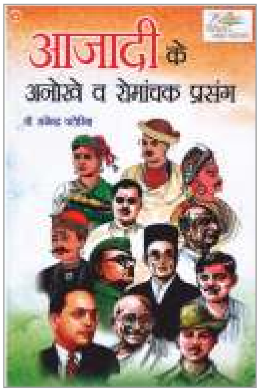

समीक्षक : **मनोज मोहन**

लेखक : **डॉ. राजेंद्र पटोरिया**

प्रकाशक : डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि., नई दिल्ली।

पृष्ठ : 416

मूल्य : रु. 450/-

इतिहास अतीत के सभी तथ्यों का नहीं, बल्कि इतिहासकार के द्वारा चुने हुए तथ्यों के आलोक में ही लिखा जाता है। अतीत के तथ्यों और प्रक्रियाओं में से जिसे इतिहासकार अपने लिए उपयुक्त समझता है, उसे ही वह अपने इतिहास में स्थान देता है, बाकी को वह छोड़ देता है। वर्तमान में यह एक आरोप की तरह इतिहास लेखन के साथ जोड़ दिया गया है। आज़ादी के अनोखे व रोमांचक प्रसंग ढूँढ़ते हुए डॉ. राजेंद्र पटोरिया भी इसी मनःस्थिति से गुज़रते हैं और पुस्तक की भूमिका में लिखते हैं कि हमारी हार्दिक इच्छा है कि ये गाथाएँ भारतीय मानस में निरंतर बनी रहें। आगामी पीढ़ी को इनका सतत ज्ञान व ध्यान रहे। इसलिए इस पुस्तक में हमने 1750 से 1942 तक के आंदोलन व क्रांतिकारियों के प्रसंग लिए हैं। इस पुस्तक में डॉ. पटोरिया ऐसे 266 प्रसंगों को शामिल करते हैं।

जलियाँवाला बाग के प्रसंग में लेखक का कहना है कि सन् 1919 का 13 अप्रैल, वैशाखी का अवसर था जब जनरल डायर ने बाग के दरवाजे बंद कर गोलियाँ चलवा दी थीं। आज भी भारतीय मानस इस घटना को भूल नहीं पाया। बाल गंगाधर तिलक के जीवन के ऐसे ही गतिमान प्रसंग से क्रांतिकारियों को प्रेरणा मिली और वे भारतमाता की परतंत्रता की शृंखला को तोड़ने की दिशा में आगे बढ़ सके। तिलक जी की तीखी भाषा से तत्कालीन सरकार काँपती थी। सरकार किसी-न-किसी बहाने तिलक को बंद रखना चाहती थी। साप्ताहिक केसरी में लिखे उनके लेखों से सरकार इतना परेशान हो उठी थी कि उसने उन पर अशांति फैलाने, कानून भंग करने और सरकार के खिलाफ लोगों को भड़काने का आरोप लगा उन्हें जेल भेज दिया। 'नेताजी सुभाषचंद्र बोस, नज़रबंदी से निकलने में सफल कैसे रहे' प्रसंग में पटोरिया कहते हैं कि 16 व 17 जनवरी, 1941 की मध्य रात्रि को वे अंग्रेजों को चकमा देकर घर से निकल ही पड़े। 19 जनवरी को पेशावर पहुँचे।

पुस्तक में दर्ज अनेक प्रसंग सुभाषचंद्र बोस के जीवन से लिए गए हैं। सच तो यही है कि तिलक, सुभाष, नेहरू और गांधी जैसे लोगों के प्रयत्नों से ही हमें स्वतंत्रता मिली है, लेकिन क्रांतिकारी अनाम रहे और इनमें से कई गुमनामी में खो जाने को मज़बूर हुए, इस तरह की जीवन इन्हें जीना पड़ा। चंद्रशेखर आजाद की माँ को यह विश्वास था कि उनका बेटा महान योद्धा है। स्वतंत्रता के अमृत महोत्सव वर्ष के इस अवसर पर उन क्रांतिकारियों, देशभक्तों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने का औचित्य सिद्ध होता है।

हिंदी राष्ट्रवाद

समीक्षक : **मनोज मोहन**

लेखक : **आलोक राय**

प्रकाशक : राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली।

पृष्ठ : 200

मूल्य : रु. 250/-

आलोक राय हिंदी के डोमेन में अंग्रेजी में लिखी अपनी चर्चित पुस्तक 'हिंदी नेशनलिज्म' के लिए जाने जाते हैं। ताउम्र अंग्रेजी पढ़ने-पढ़ाने के बावजूद वे लगातार हिंदी के हितचिंता में लगे रहे हैं। अभी हाल ही में इसी हिंदी की हितचिंता के तहत उन्होंने अपनी पुस्तक 'हिंदी नेशनलिज्म' का अनुवाद हिंदी राष्ट्रवाद शीर्षक से किया है। इस पुस्तक की भूमिका अनुवाद के बहाने में वे इस पुस्तक को अनुवाद न कहकर पुनर्लेखन कहते हैं। साथ ही, हिंदी और अंग्रेजी की भाषाई प्रकृति की भिन्नता को पाठक के सामने रखते हैं : अंग्रेजी में जिस तरह का संक्षेपण संभव है, वो संभवतः अत्यंत संस्कृतनिष्ठ हिंदी में ही संभव होगा और इस बात का संबंध अनुवाद से है कि हिंदी को लेकर जिस तरह की बात हम कह रहे हैं, या कहना चाह रहे हैं, वो ही इस घोर संस्कृतनिष्ठ हिंदी को हमारे लिए वर्जित-सा बना देता है। आलोक राय यहाँ पर सही कह रहे हैं कि हिंदी राष्ट्रवाद के तर्क और उस तर्क की भाषा में अंतर्विरोध गले नहीं उतरता। मूलतः वे संस्कृतनिष्ठ हिंदी के पक्षधर नहीं हैं।

संविधान सभा में भाषा को लेकर तीखी नोक-झोंक के बाद काफी लोग हिंदुस्तानी के पक्ष में थे। यहाँ तक कि गांधीजी ने एक समझौता सुझाया था—हिंदी या हिंदुस्तानी, लेकिन बड़े ही दिलचस्प अंदाज में आलोक राय गांधी के 'या' प्रयोग का विश्लेषण करते हैं। इस 'या' के दो अभिप्राय हो सकते हैं—भिन्नता और ऐक्य। 'ऐक्य' समझें तो मतलब निकला कि हिंदुस्तानी हिंदी ही है, सो मुल्ला छिटक गए। भिन्नता मानें तो हिंदुस्तानी हिंदी नहीं है, सो पंडित जी रूठ गए।

हिंदी नेशनलिज्म के अंग्रेजी संस्करण से यह पुस्तक इस मायने में भी विशिष्ट है कि उत्तर कथन के 46 पृष्ठ इसमें शामिल कर लिए गए हैं, जो अंग्रेजी से हिंदी अनुवाद के बीच के दो दशक के अंतराल को भर देते हैं। ख़ासकर अपूर्वानंद और रविकांत के आलेख जो हिंदी राष्ट्रवाद पुस्तक को ध्यान में रखकर लिखे गए हैं।

इस पुस्तक में आलोक हिंदी राष्ट्रवाद और हिंदू राष्ट्रवाद के एक होने का खंडन करते हुए कहते हैं कि मेरी नज़र में ये एक नहीं हैं। साथ ही, दोनों के बीच के संबंध को खुद जानने की सलाह भी देते हैं।

अगर हम यह चाहते हैं कि हिंदी राष्ट्रवाद को एक रूप दे सकें कि हिंदी राष्ट्रवाद और सांप्रदायिक राष्ट्रवाद एक नहीं है तो उसके लिए यह ज़रूरी है कि हिंदी वाले पहले अपना इतिहास ठीक से जानें।

आलोक राय इस अनूदित या पुनर्लिखित पुस्तक के अंत में अपने आशावादी नज़रिए को रखते हैं कि हिंदी हिंसा-जनित विकृतियों से मुक्त हो, यह उनका लक्ष्य है। कृत्रिम 'हिंदी' से बँधी हुई जन-भाषा हिंदी, समस्या का ही अंग बनकर रह गई है, लेकिन यही जनभाषा हिंदी, उस फ़रेबी 'हिंदी' से छुटकारा पाकर, समाधान का रास्ता प्रशस्त कर सकती है और गहरी आस्था के साथ वे यह कहते हैं कि इस ऐतिहासिक दुःस्वप्न से जागकर मुक्ति पाने की प्रक्रिया आसान नहीं होगी, डगर लंबी है, बाधाएँ अनेक, लेकिन शुरुआत होगी। 'मेरे लिए बीस साल बाद भी इस पुस्तक के बुनियादी नतीजों से असहमत होना मुश्किल है', रविकांत के इस कथन के साथ मेरी भी पूर्ण सहमति है। यह पुस्तक शुरू से आखिर तक हिंदीभाषी पाठक को संबोधित है।

रिश्तों की सौगात

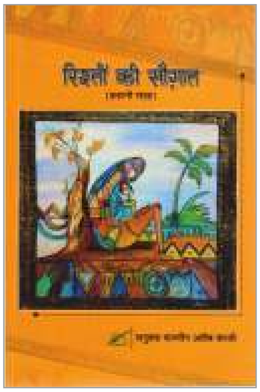

समीक्षक : **कमलेश पाण्डेय 'पुष्प'**

लेखिका : **शगुफ्ता यास्मीन अतीब काजी**

प्रकाशक : सृजन बिंब प्रकाशन, नागपुर।

पृष्ठ : 108

मूल्य : रु. 175/-

कहानीकार जब संवेदनाओं की गहराई में डूबकर सृजन करता है तो एक मार्मिक कहानी पाठकों तक पहुँचती है। शगुफ्ता की कहानियों के केंद्र में औरत है, जिससे जुड़ा हर प्रसंग मार्मिकता से ओत-प्रोत है। उनके कहानी संग्रह 'रिश्तों की सौगात' में कुल 16 कहानियाँ हैं। इन कहानियों में जहाँ समाज में औरत के जीवन का कटु सत्य है वहीं सामाजिक सरोकार बहुतायत से मुखरित हुआ है। इनकी कहानियाँ विभिन्न पात्रों के माध्यम से समाज को एक संदेश देती हैं। संग्रह की सभी कहानियाँ रोचक होने के साथ ही अपने सशक्त कथानक से समाज की संकुचित विचारधारा पर गहरी चोट करती हैं। कहानी 'वो पहली नजर' में आधुनिक समाज में युवक-युवती के आपसी प्रेम का जीवंत चित्रण किया गया है। कहानी में प्रेम से जुड़े हर शब्द सार्थक एवं सटीक रूप में कथानक को पठनीय व रोमांचक बनाते हैं, जैसे—'हृदय में प्रेम का अंकुर फूटने लगा, मन की वीणा के तार बजने लगे, खामोश समंदर में उठी तूफानी लहरों की तरह उसके हृदय में प्रेम लहरियाँ हिलोरें ले-लेकर गगन को चूमने को बेताब हो उठीं।' इसी प्रकार स्त्री को समाज में जहाँ प्रतिकार करने का अधिकार नहीं दिया गया है वहीं कहानी 'कटघरा' में स्त्री के अपने अधिकारों को लेखिका ने महत्व दिया है और वह स्वयं पर लगे इल्जाम को झूठा साबित करने के लिए कचहरी की ओर चल पड़ती है।

शगुफ्ता की कहानियाँ स्त्री के अपने जीवन में सहे गए दुखों की जीवंत गाथा प्रस्तुत करती हैं। भावनाओं के समंदर में गोता लगाने वाली एक स्त्री जब जीवन में कंटीले पथ पर चलने को बाध्य कर दी जाती है तब जो तस्वीर उभरती है, उसकी बानगी हैं ये कहानियाँ। कहानी 'चेतना के स्वर' हो या 'अनिर्णय-निर्णय', इनमें भी स्त्री जीवन के संघर्षों से जूझने की व्यथा का मार्मिक चित्रण किया गया है। लेखिका की ये पंक्तियाँ स्त्री मन की व्याख्या कुछ इस प्रकार करती हैं—'जीवन केवल भावनाओं में बहने का नाम नहीं होता। वह व्यावहारिक धरातल पर खड़ा होता है। प्यार, वह भी तो कुर्बानियाँ माँगता है। उसने तराजू के एक पलड़े में प्यार तथा दूसरे में बच्चों के भविष्य की जिम्मेदारियों को रखकर तौला। प्यार के आगे जिम्मेदारियों का पलड़ा भारी पड़ गया।' कहानी 'डर' में लेखिका ने तनावों के कारण डर के साये तले जीवन व्यतीत करने की त्रासदी को चित्रित किया है। इसमें आजकल के समय में नई पीढ़ी द्वारा प्रतिष्ठा के नाम पर सब-कुछ दाँव पर लगाने वाले बच्चों का जिक्र किया गया है, जिनकी फरमाइशों को किसी कारण पूरा न किया गया तो वे अवसादग्रस्त हो जाते हैं। 'अर्थी' कहानी में समाज में व्याप्त उस कुरीति पर प्रकाश डाला गया है जो ज्यादातर परिवार को बेड़ियों में जकड़ता जा रहा है। यह कुरीति है बेटे न पैदा करने वाली स्त्री को परिवार के लोगों द्वारा प्रताड़ित किया जाना। कहानी में दो बेटियाँ पैदा करने वाली अपर्णा मानसिक आघात सहन न कर सकी और आत्महत्या करने को विवश हो जाती है।

कहानी संग्रह की सभी कहानियों में स्त्री जीवन की करुण गाथा है, जिनमें न केवल संवेदना की पराकाष्ठा है, बल्कि समाज में स्त्री को हर क्षेत्र में विजयश्री हासिल करने वाली साबित किया गया है। सभी कहानियों की नायिकाएँ पाठकों को अपने घर-परिवार की लगती हैं, जो कि समाज की सोच बदलने का माद्दा रखती हैं तो अपने श्रेष्ठतम प्रदर्शन से पुरुष वर्ग को नसीहत भी देती हैं। लेखिका को कहानी का कथानक ढूँढ़ने में मशक्कत नहीं करनी पड़ी है, क्योंकि उनके आस-पास ही तमाम घटनाएँ घटित होती दिख जाती हैं। हर घटना ही जैसे उनके अंतर्मन को झकझोर गई है और संवेदना की गहराई में डूबकर वह कथा लेखन में तत्पर हो गई हैं। संग्रह की एक और सशक्त कहानी 'प्रेम पाती' भी अन्य कहानियों की तरह मन को झकझोरने वाली है। कहानी का नायक एक कवि है जिसकी कविता से प्रेरित होकर एक सुंदर युवती उससे प्रेम कर बैठती है। दोनों का प्रेम एक दिन जब प्रगाढ़ हो जाता है तब वे विवाह कर लेते हैं, पर वह उसके जीवन में ज्यादा समय तक रह नहीं पाती है। लेखिका ने इसे खूबसूरत लहजे में लिखा है—'नियति का खेल, खिली-खिली रहने वाली स्मृति अब मुरझाने लगी। दिन, महीने गुजरने के साथ रवि के हृदय में वास करने वाला सुंदर पुष्प मुरझा गया।' कहानी का अंत बहुत ही मार्मिक अंदाज में हुआ है। नायिका की पुण्यतिथि पर नायक कवि सम्मेलन में कविता के रूप में विरह वेदना से व्याकुल विरह रास की प्रेम पाती पढ़ने जाता है जहाँ उसे पढ़ते-पढ़ते उसकी हृदय गति थम जाती है। वाक्य विन्यास रोचक एवं पठनीय है। कवर पृष्ठ आकर्षक है। यह पुस्तक मार्मिक कहानियों का एक पुष्प गुच्छ है।

काशी सांस्कृतिक राजधानी और तमिल संस्कृति गौरव का केंद्र है : प्रधानमंत्री

"काशी-तमिल संगमम् अपने आप में विशेष है, अद्वितीय है। आज हमारे सामने एक ओर पूरे भारत को अपने आप में समेटे हमारी सांस्कृतिक राजधानी काशी है तो दूसरी ओर भारत की प्राचीनता और गौरव का केंद्र हमारा तमिलनाडु और तमिल संस्कृति है।" उक्त उद्‌गार माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने काशी-तमिल संगमम् के उद्घाटन सत्र के दौरान व्यक्त किए। उन्होंने कहा कि इस कार्यक्रम का उद्देश्य देश के दो सबसे महत्वपूर्ण और प्राचीन शिक्षा केंद्रों, तमिलनाडु और काशी के बीच सदियों पुराने संबंधों का उत्सव मनाना, फिर से इसे मजबूत करना और खोज करना है। काशी-तमिल संगमम् उत्तर प्रदेश के वाराणसी में 17 नवंबर, 2022 से 16 दिसंबर, 2022 तक आयोजित किया गया। इस दौरान प्रधानमंत्री ने एक पुस्तक 'तिरुक्कुरल' का 13 भाषाओं में इसके अनुवाद के साथ विमोचन भी किया।

यह कार्यक्रम 'आज़ादी का अमृत महोत्सव' के भाग के रूप में और 'एक भारत श्रेष्ठ भारत' की भावना को बनाए रखने के लिए भारत सरकार द्वारा की गई एक पहल है।

गंगा और यमुना नदियों के संगम की तुलना करते हुए प्रधानमंत्री ने कहा कि काशी-तमिल संगम समान रूप से पवित्र हैं जिसमें अनंत अवसर और शक्तियाँ समाहित हैं। काशी और तमिलनाडु के कॉन्टेक्स्ट में इस फिलॉसफी को हम साक्षात् देख सकते हैं। काशी और तमिलनाडु, दोनों ही संस्कृति और सभ्यता के टाइमलेस सेंटर्स हैं। दोनों क्षेत्र, संस्कृत और तमिल जैसी विश्व की सबसे प्राचीन भाषाओं के केंद्र हैं। कार्यक्रम के दौरान स्टोरी टेलिंग, अकादमिक, सांस्कृतिक-साहित्यिक, विचार गोष्ठी, पुस्तक विमोचन, खेल, कार्यशालाएँ आयोजित की गईं।

भारतीय भाषा दिवस मनाया

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत ने 11 दिसंबर, 2022 को नई दिल्ली में अपने मुख्यालय और देशभर के सभी क्षेत्रीय कार्यालयों, पुस्तक प्रोन्नयन एवं विक्रय केंद्रों में भारतीय भाषा दिवस मनाया। इस दौरान दिल्ली, काशी, मुंबई, कोलकाता और देश के अनेक नगरों में छात्रों के लिए गतिविधियाँ आयोजित की गईं।

गंगा पुस्तक परिक्रमा का आयोजन

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत द्वारा पहली बार शुरू की गई सचल पुस्तक प्रदर्शनी ने गंगा नदी के किनारे स्थित सभी प्रमुख शहरों, कस्बों और बस्तियों से गुजरते हुए लगभग 2500 किलोमीटर की यात्रा की। 81 दिनों की यह यात्रा 03 अक्तूबर, 2022 को गंगोत्री, उत्तराखंड से शुरू की गई और 22 दिसंबर, 2022 को हल्दिया में समाप्त हुई।

संविधान दिवस पर व्याख्यान आयोजित

"हमारे संविधान की प्रस्तावना बताती है कि भारत एक संप्रभु देश है। हम सभी को लगता है कि भारतीय लोकतंत्र यूनाइटेड किंगडम से प्रभावित है, हमें इस धारणा को बदलना होगा।" जिंदल ग्लोबल लॉ यूनिवर्सिटी की एसोसिएट प्रोफेसर और एसोसिएट डीन डॉ. नेहा मिश्रा ने संविधान दिवस (26 नवंबर) की पूर्व संध्या पर 'भारत-लोकतंत्र की जननी' विषय पर उक्त उद्‌गार व्यक्त किए। श्रीमती नीरा जैन, मुख्य संपादक एवं संयुक्त निदेशक और श्री संचित त्यागी, संयुक्त निदेशक (प्रशासन एवं वित्त) ने धन्यवाद ज्ञापित किया।

ब्रह्मपुत्र पुस्तक परिक्रमा आयोजित

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत की सचल प्रदर्शनी ने ब्रह्मपुत्र पुस्तक परिक्रमा के दौरान ब्रह्मपुत्र के प्रवाह के साथ दौरा किया। इस दौरान सचल प्रदर्शनी ने 17 शहरों का भ्रमण करते हुए इस क्षेत्र में साहित्य और पठन-पाठन के प्रति जागरूकता फैलाने का महती कार्य किया।

फ्रैंकफर्ट पुस्तक मेले में न्यास ने की भागेदारी

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत ने फ्रैंकफर्ट, जर्मनी में 19 से 23 अक्तूबर, 2022 तक प्रकाशकों एवं पुस्तक विक्रेताओं के लिए प्रमुख पुस्तक व्यापार मेला 'फ्रैंकफर्ट बुकमेसे 2022' में सक्रिय सहभागिता की। मेले में इंडिया स्टैंड का उद्‌घाटन डॉ. अमित तेलंग, भारत के महावाणिज्य दूत, फ्रैंकफर्ट द्वारा न्यास-निदेशक श्री युवराज मलिक, फ्रैंकफर्ट पुस्तक मेले की उपाध्यक्ष सुश्री क्लाउडिया कैसर और अन्य गणमान्य व्यक्तियों की उपस्थिति में किया गया। इस अवसर पर न्यास द्वारा प्रकाशित वर्नर बंडेल द्वारा लिखित 'आर्यानंद एंड द क्राउन ऑफ लाइफ' का भी विमोचन किया गया।

चित्रकारों की कार्यशाला आयोजित

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत द्वारा 21-25 नवंबर, 2022 तक भाषा भवन कॉन्फ्रेंस हॉल, नेशनल लाइब्रेरी, कोलकाता में पाँच दिवसीय लेखकों और

चित्रकारों की कार्यशाला का आयोजन किया गया। कार्यशाला का उद्‌घाटन श्रीमती नीरा जैन, मुख्य संपादक और संयुक्त निदेशक ने किया। कार्यशाला में प्रतिष्ठित लेखक और चित्रकारों ने बच्चों के लिए पुस्तकें विकसित करने हेतु विभिन्न विषयों, सामग्री और चित्रों पर विचार-विमर्श किया।

गोमती पुस्तक मेला आयोजित

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत द्वारा आयोजित लखनऊ का पहला पुस्तक महोत्सव गोमती रिवरफ्रंट पार्क में 29 अक्तूबर, 2022 से 06 दिसंबर, 2022 तक नौ दिनों तक चला। यह आयोजन लखनऊ विकास प्राधिकरण व प्रशासन के सहयोग से आयोजित किया गया है। इस दौरान पुस्तक पठन, सांस्कृतिक-साहित्यिक, विचार गोष्ठी, पुस्तक विमोचन, कार्यशालाएँ जैसी सैकड़ों गतिविधियाँ आयोजित की गईं।

न्यास : एसोचैम एडुटेक 100 शिखर सम्मेलन का नॉलेज पार्टनर

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत एसोचैम के एडुटेक 100 शिखर सम्मेलन का नॉलेज पार्टनर बना। उद्‌घाटन सत्र में न्यास-निदेशक श्री युवराज मलिक ने मुख्य अतिथि पुडुचेरी की माननीय उपराज्यपाल डॉ. तमिलिसाई सुंदरराजन का स्वागत किया। इस अवसर पर श्री मलिक ने पुस्तक पठन की बढ़ती संस्कृति पर अपने विचार साझा किए और एक भारतीय, अंतरराष्ट्रीय, समावेशी और प्रभावशाली नीति के रूप में राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 पर भी चर्चा की।

न्यास द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'कवियों का विज्ञान संसार' भारत सरकार के प्रमुख वैज्ञानिक सलाहकार प्रो. ए.के. सूद को भेंट करते पुस्तक के अनुवादक डॉ. मेहेर वान।

माननीय उपराष्ट्रपति श्री जगदीप धनखड़ को न्यास से प्रकाशित पुस्तक 'पेशावर के महानायक : वीर चन्द्र सिंह गढ़वाली' भेंट करते हुए लेखक व पूर्व शिक्षा मंत्री डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक'।

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत और श्री मध्यभारत हिंदी साहित्य समिति, इंदौर ने संयुक्त पहल करते हुए समिति परिसर में पुस्तक बिक्री केंद्र की शुरुआत की है। यहाँ न्यास द्वारा प्रकाशित सभी पुस्तकें उपलब्ध हैं।

'हिंदी पखवाड़ा' 2022 के विजेता

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत में हिंदी पखवाड़ा, 2022 (14-29 सितंबर, 2022) के दौरान आयोजित प्रतियोगिताओं के विजेता इस प्रकार हैं—

हिंदी निबंध लेखन

पुरस्कार	अधिकारी वर्ग	कर्मचारी वर्ग
प्रथम	श्री मनोज कुमार पाण्डेय	श्रीमती पूनम मधुकर
द्वितीय	श्रीमती फरहा खान	श्री सूर्यकांत प्रभाकर पगाड़े
तृतीय	श्री संदीप कुमार	श्रीमती भानुप्रिया

सामान्य हिंदी ज्ञान प्रश्नोत्तरी

पुरस्कार	अधिकारी वर्ग	कर्मचारी वर्ग
प्रथम	श्री सौरभ सिंह खरवार	श्री प्रवीण कुमार
द्वितीय	श्री संदीप कुमार	श्रीमती कांति बिष्ट
		श्री अविनाश आनंद
तृतीय	श्रीमती बबीता बिष्ट	श्रीमती एकता
		श्री प्रवेश कुमार

हिंदी में टिप्पण एवं प्रारूप लेखन

पुरस्कार	अधिकारी वर्ग	कर्मचारी वर्ग
प्रथम	श्री सतीश चंद	श्री प्रवीण कुमार
द्वितीय	श्री मनोज कुमार पाण्डेय	श्रीमती पूनम मधुकर
		श्रीमती अरुणा देवी
तृतीय	श्री नीतीश कुमार	श्री मुकेश पवार
		श्रीमती भानुप्रिया
		श्री अविनाश आनंद

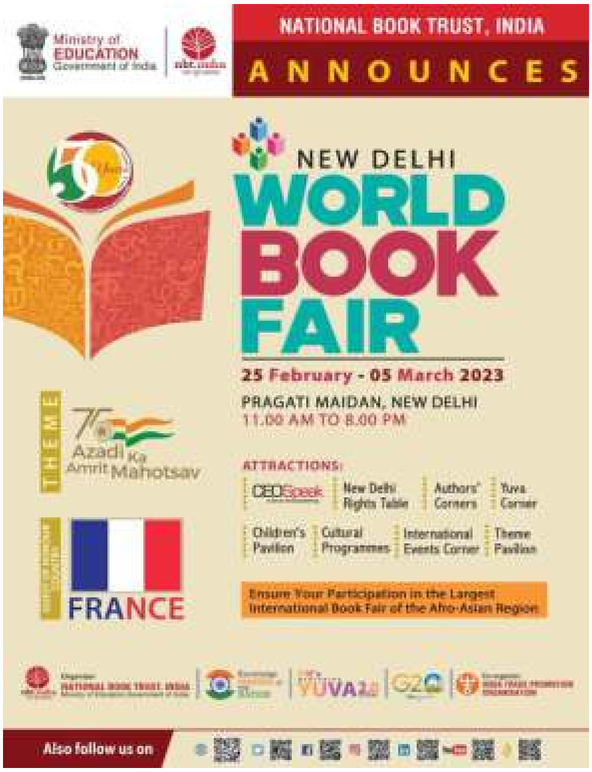

पाठकीय प्रतिक्रिया

'पुस्तक संस्कृति' का सितंबर-अक्तूबर 2022 अंक अलवर कार्यशाला में प्राप्त हुआ। स्वतंत्रता संग्राम के बारे में अत्यंत उपयोगी संकलन योग्य सामग्री अंक को पठनीय बनाती है। साधुवाद!

—**मदनगोपाल लढ़ा**, बीकानेर, राजस्थान

'पुस्तक संस्कृति' का नवंबर-दिसंबर 2022 अंक प्राप्त हुआ। धन्यवाद! प्रधान संपादक प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा के संपादकीय ने प्रकाशन उद्योग द्वारा विश्व को जिस तरह से परिचित कराया जाता है, उस पर अच्छी तरह से प्रकाश डाला है। प्रधान संपादक को बधाई! प्रकाशित पुस्तकों के द्वारा मानव जो ज्ञान प्राप्त करता है, उसके लिए प्रकाशन उद्योग की प्रशंसा की जानी चाहिए।

प्रधान संपादक की यह बात बिलकुल सच है कि यदि छपाई का आविष्कार न हुआ होता तो न जाने कितने श्रेष्ठ, युग परिवर्तनकारी और विकासशील विचार एक पीढ़ी तक सीमित रह जाते। छपाई के कार्य ने मानव को जो ज्ञान दिया है, उसके लिए प्रकाशन उद्योग को बधाई!

विरासत के अंतर्गत श्री विजय शंकर सिंह का लेखक 'देशवासियो, लड़ते रहो : सुभाषचंद्र बोस' ज्ञानवर्धक है। आलेख 'पीड़ा का पर्याय : गिरमिटिया परंपरा' मन को झकझोरने वाला है। घर-द्वार छोड़कर बाहर कमाने के लिए जाना और वहाँ पुरुष जिस तरह के कष्टों को झेलता है, उसका वर्णन शब्दों में करना कठिन है। परिवार से अलग रहकर बाहर कमाने जाने पर पुरुष जिस तरह का संघर्ष करता है, कष्टों को झेलता है, उसे सभी को महसूस करना होगा। भूख और गरीबी से मुख मोड़कर उससे नहीं निपटा जा सकता है, उसको मिटाने के लिए हर तबके को आगे आना होगा।

साहित्यिक गतिविधियों में नमामि गंगे परियोजना के साथ बहेगी ज्ञान गंगा, विद्यार्थियों को पुस्तक पढ़ने के लिए प्रेरित करेगी। नवंबर-दिसंबर, 2022 के अंक में प्रकाशित सभी आलेख ज्ञानवर्धक हैं।

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत द्वारा बाल साहित्य पर आयोजित कार्यशाला को प्रतिमाह हर जिले में आयोजित किया जाए तो यह सभी के लिए उपयोगी होगा। पत्रिका के नित नए रूप के लिए संपादक श्री पंकज चतुर्वेदी जी को विशेष धन्यवाद!

—**डॉ. मंजू देवी**, वाराणसी

'पुस्तक संस्कृति' के अंक जुलाई-अगस्त 2022 की प्रति पाकर मुझे अच्छा लगा। इसकी सामग्री को आद्योपांत देख, पढ़ चुका हूँ। सरकारी, अर्धसरकारी जिस तरह की पत्रिकाएँ आज सामने आ रही हैं, लगभग सभी से परिचित हूँ। उनमें सचित्र पत्रिकाएँ कम हैं। 'पुस्तक संस्कृति' उन्हें दिशा दिखा सकती है। लेखक की अपनी सीमाएँ हैं तो संपादक की भी अपनी सीमा और मर्यादा मानी जाती है। तब भी न्यास की नीति के अनुकूल पत्रिका का आवरण चित्र, आजादी का अमृत महोत्सव, इस पर सामग्री जुटाना और उसके करीने से सजाकर प्रस्तुत करना एक प्रक्रिया में से गुजरना है। टीम कितनी ही लंबी या सार्थक कहलाए, उन्हें दिशा दर्शन तो देना ही पड़ता है।

मुझे अच्छा लगा कि आपने 'आइने इधर भी हैं' का आवरण और परिचय देकर मुझे प्रोत्साहित किया है। उदयपुर के मेरे दोस्त राजेंद्र मोहन भटनागर मुझे यह सब फोन पर पढ़कर सुना रहे थे तो मैं आपको आशीष दे रहा था। अंदर से शुभकामनाएँ निकल रही थीं। किसी भी चीज को नोटिस किया जाए तो भला किसे प्रसन्नता न होगी। शुभकामनाएँ!

—**प्रो. फूलचंद मानव**, मोहाली, पंजाब

घोषणा-फार्म - 4 (नियम 8 देखिए)

पुस्तक संस्कृति (द्विमासिक)

1.	**प्रकाशन स्थल**	:	नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज़-II, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070
2.	**प्रकाशन अवधि**	:	द्विमासिक
3.	**मुद्रक का नाम**	:	अनुज कुमार भारती, द्वारा राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत
	नागरिकता	:	भारतीय
	पता	:	राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज़-II, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070
4.	**प्रकाशक का नाम**	:	राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत
	नागरिकता	:	भारतीय
	पता	:	नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज़-II, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070
5.	**संपादक का नाम**	:	पंकज चतुर्वेदी
	नागरिकता	:	भारतीय
	पता	:	नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज़-II, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070
6.	**पत्रिका का स्वामित्व**	:	राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत

RNI NO. DELHIN / 2016 / 68219

मनोरंजन, ज्ञान और जिज्ञासा की अनूठी दुनिया!

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के कुछ नए प्रकाशन

सीलिएक रोग : एक विस्तृत मार्गदर्शिका

पंकज वोहरा

अनुवाद : **मेहेर वान**

इस पुस्तक में सीलिएक रोग के इतिहास से लेकर इसकी व्यापकता, अभिव्यक्तियाँ, निदान और उपचार के सभी पहलुओं को शामिल किया गया है। इसमें ग्लूटेन मुक्त आहार की बारीकियाँ, दैनिक भोजन के कुछ आसान व्यंजनों को तैयार करने की मार्गदर्शिका सहित विवरण दिया गया है। साथ-ही-साथ बारंबार पूछे जाने वाले प्रश्नों के साथ रोग की व्याख्या भी वर्णित है।

पृ. 226; रु. 330.00

भारत के मूक प्रवासी

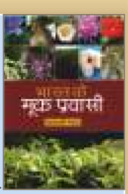

कादम्बरी मेहरा

इस पुस्तक में गन्ना, नील, तुलसी, कपास, चाय सहित अनेक भारतीय फूल तथा सुगंध देने वाले ऐसे ही अनेक पादपों के संबंध में तथ्यात्मक जानकारी दी गई है। ये पादप भारत की भूमि से इंग्लैंड, अमेरिका, मॉरीशस आदि अनेक देशों में ले जाए गए, जिन्होंने उन देशों में समृद्धि के द्वार खोल दिए। यह पुस्तक आठ अध्यायों में भारत के विश्व को दिए 'मूक प्रवासी' अर्थात पादपों से अवगत कराती है।

पृ. 130; रु. 230.00

भारत में पत्रकारिता

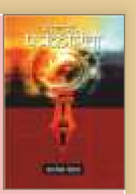

आलोक मेहता

यह संशोधित संस्करण है। इस पुस्तक में लेखक ने भारतीय पत्रकारिता पर हाल के वर्षों में दबाव और बढ़ते हमलों का जिक्र करते हुए इस क्षेत्र में होने वाले अनुभवों को साझा किया है। इसमें 33 लेखों का संकलन है, जो कि पत्रकारिता के आंतरिक एवं बाह्य दोनों पक्षों पर चिंतनमूलक ढंग से बात करते हैं।

पृ. 396; रु. 470.00

बेहतर कल के लिए योग के साथ बढ़ें

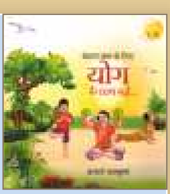

आचार्य बालकृष्ण

यह पुस्तक रंगीन चित्रों और सरल भाषा में बच्चों को योग सिखाती है। बिना किसी बाह्य सहयोग के स्वयं किए जाने वाले व्यायामों को इस पुस्तक में चरणबद्ध रूप में समझाया गया है। साथ ही, पुस्तक से गुजरते हुए बच्चे मनोरंजक कहानियों और खेल-खेल में अलग-अलग मुद्राओं को बनाना सीखकर चुस्त-दुरुस्त रह सकते हैं।

पृ. 128; रु. 240.00

गांधी : रामकथा विचार-कोश

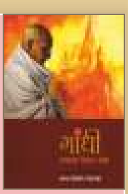

कमल किशोर गोयनका

पुस्तक में महात्मा गांधी के धर्म-अधर्म, सत्य, अहिंसा, ईश्वर आस्था आदि के माध्यम से उनके विचार व दर्शन को प्रतिबिंबित किया गया है। इसमें गांधी जी के स्वराज को पाने के सिद्धांतों व जीवन-संघर्ष की गाथा को रामकथा के प्रसंगों से जोड़कर प्रस्तुत किया गया है। महात्मा गांधी अपने उद्बोधन, लेखन, विचार और व्यक्तिगत जीवन में हर समय राममय दिखे, इसका वर्णन पुस्तक में है।

पृ. 260; रु. 665.00

क्रिकेट कमेंटरी : एक कला, एक विज्ञान

सुशील दोशी

इस पुस्तक में क्रिकेट के उद्भव व विकास, कमेंटेटर के मूलभूत गुणों, कमेंटरी की तैयारी, भाषा-शैली, तकनीकी जानकारी, क्रिकेट कमेंटेटर कैसे बनें जैसे विषयों पर विचार किया गया है। पुस्तक में लेखक ने अपने 53 वर्षों के अनुभव को साझा किया है। साथ ही, कमेंटरी के वैज्ञानिक और अवैज्ञानिक गुणों के बारे में विवरण प्रस्तुत किया गया है।

पृ. 108; रु. 160.00

हम होंगे कामयाब कैंसर के क्रीडांगन में

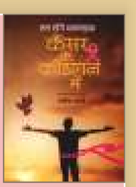

मनोज शर्मा

प्रस्तुत पुस्तक के माध्यम से बताया गया है कि कैंसर रोगी अवसाद से कैसे निकल सकता है। पुस्तक में सकारात्मक रहते हुए कैंसर की मूलभूत जानकारियों, उनके लक्षणों, पहचान, इलाज की शुरुआत, उपचार विषयक चर्चा विस्तृत ढंग से की गई है।

पृ. 200; रु. 265.00

nbt.india
एकः सूते सकलम्

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत

शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार

नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज़-II, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070.

फोन : 011-26707761 ● **ई-मेल** : nro.nbt@nic.in

वेबसाइट : www.nbtindia.gov.in